अल-रिसाला

जनवरी-फ़रवरी 2024

अल-रिसाला
जनवरी-फ़रवरी 2024

CPS International
centre for peace & spirituality

माहनामा 'अल-रिसाला' को हिंदी स्क्रिप्ट में लाने की यह हमारी एक कोशिश है। मुश्किल उर्दू अल्फ़ाज़ को भी आसान कर दिया गया है, ताकि ज़्यादा-से-ज़्यादा लोग इसे पढ़कर फ़ायदा उठाएँ और अपनी ज़िंदगी, अपनी शख़्सियत में मुस्बत (positive) बदलाव ला सकें।

नीचे दी गई हमारी वेबसाइट और सोशल मीडिया पेजिस से मज़ीद फ़ायदा उठाएँ।

संपादकीय टीम

आरिफ़ हुसैन आलम, सैफ़ अनवर
मोहम्मद आरिफ़, फ़रहाद अहमद
ख़ुर्रम इस्लाम क़ुरैशी, मेहदियामीर, इरफ़ान रशीदी

Centre for Peace and Spirituality International
1, Nizamuddin West Market,
New Delhi-110013
info@cpsglobal.org
www.cpsglobal.org

cpsglobal.org
twitter.com/WahiduddinKhan
facebook.com/maulanawkhan
youtube.com/CPSInternational
+91-99999 44118
t.me/maulanawahiduddinkhan
linkedin.com/in/maulanawahiduddinkhan
instagram.com/maulanawahiduddinkhan

To order books of
Maulana Wahiduddin Khan, please contact
Goodword Books
Tel. 011-41827083,
Mobile: +91-8588822672
E-mail: sales@goodwordbooks.com

Goodword Bank Details
Goodword Books
State Bank of India
A/c No. 30286472791
IFSC Code: SBIN0009109
Nizamuddin West Market Branch

विषय-सूची

जंग नहीं	3
गुज़रा हुआ ज़माना	6
एक हदीस	9
इल्म और तक़्वा	10
जन्नत का मुसाफ़िर	11
सफ़र-ए-मारिफ़त	13
मुताला-ए-हदीस	18
इंतिहा-पसंदी	31
इज्तिहाद क्या है?	33
सफ़र का रुख़	36
असल मसला	37
एक सवाल	42
सुप्रीम चीज़	43
डायरी : 1986	46
अनकही कहानी	54
ज़िंदगी के क़ीमती साल	64
ख़बरनामा इस्लामी मरकज़ : 281	65

जंग नहीं

क़ुरआन की एक आयत इन अलफ़ाज़ में आई है—

وَاتَّقُوا فِتْنَةً لا تُصِيبَنَّ الَّذِينَ ظَلَمُوا مِنْكُمْ خَاصَّةً.

"और तुम लोग बचो एक ऐसे फ़ित्ने से, जो हरगिज़ महदूद नहीं रहेगा (सिर्फ़) उन लोगों तक, जिन्होंने ज़ुल्म किया है।"

(क़ुरआन, 8:25)

अल्लामा इब्न अल-जौज़ी (वफ़ात : 1201 ई.) कहते हैं कि इस आयत में फ़ित्ने का एक मतलब उलमा के नज़दीक जंग भी है (ज़ाद अल-मसीर, जिल्द 2, सफ़्हा 201)।

अल्लामा वाहिदी नीशापुरी (वफ़ात : 1076 ई.) ने इस आयत के तहत लिखा है कि हर उस फ़ित्ने से दूर रहो कि अगर तुम उसे अवॉइड (avoid) नहीं करोगे, तो उसका संगीन नतीजा तुममें से सिर्फ़ फ़ित्ना भड़काने वाले ज़ालिमों तक महदूद नहीं रहेगा (لاتقعبالظَّالميندونغيرهم), बल्कि फ़ित्ना भड़काने वाले और न भड़काने वाले हर एक उसकी लपेट में आ जाएँगे (अल-वजीज़ लिल-वाहिदी, सफ़्हा 436)।

जदीद जंगी आलात (instruments) के ज़रिये लड़ी जाने वाली जंग इस आयत की वाज़ेह मिसाल है। नई दिल्ली में एक साहब मेडिकल टूरिज़्म के फील्ड से ताल्लुक़ रखते हैं। उनसे एक मरतबा मैंने यह पूछा कि अफ़ग़ानिस्तान, इराक़, शाम और यमन वग़ैरह में जो लंबे अरसे तक जंगें हुई हैं, वहाँ की आवाम की सेहत पर इसका क्या असर दिखाई देता है? उन्होंने जो जवाब दिया था, उसका ख़ुलासा यह है कि बहुत बुरा असर हुआ है। बारूद और दूसरे केमिकल हथियारों (chemical

weapons) के इस्तेमाल की वजह से इन मुल्कों में बस्ती-की-बस्ती कैंसर और दूसरी संगीन बीमारियों की लपेट में आ चुकी हैं। हालाँकि आम लोगों ने जंग में हिस्सा नहीं लिया था। जिस्मानी माज़ूरी तो बहुत ज़्यादा आम है।

हक़ीक़त यह है कि पुराने ज़माने की जंग का नुक़सान आम तौर पर सिर्फ़ लड़ने वालों के दरमियान रहता था, मगर मौजूदा ज़माने के हथियार, ख़ास तौर पर वेपंस ऑफ मास डिस्ट्रक्शन ने जंग का मतलब बिलकुल बदल दिया है। मैंने चैट जीपीटी (ChatGPT) पर यह सवाल पूछा कि मॉडर्न वॉर का असर क्या होता है, तो उसने यह जवाब दिया है—

Q. What is the impact of modern warfare?

A. Modern warfare has a profound impact on societies, individuals, and the world as a whole. Some key impacts include:

Loss of Life: War results in the loss of countless lives, including soldiers and civilians. Modern weaponry can cause mass casualties, leading to human suffering on a massive scale.

Physical and Psychological Trauma: Survivors of war often suffer physical injuries, but they may also experience long-lasting psychological trauma, such as post-traumatic stress disorder (PTSD).

Destruction: Modern warfare can devastate infrastructure, cities, and economies. The reconstruction of war-torn regions can take years or even decades.

Displacement: War leads to the displacement of millions of people, creating refugee crises and straining resources in neighbouring countries.

Economic Consequences: War has negative economic impacts, both on the countries directly involved and on the global economy. It diverts resources away from productive endeavours.

Political Instability: Wars can lead to political instability, regime changes, and the emergence of new power dynamics in regions.

Environmental Damage: Modern warfare often involves the use of environmentally harmful technologies and can lead to environmental degradation and long-term ecological consequences.

Social and Cultural Disruption: War can disrupt social structures and cultural norms, leading to societal breakdown and loss of cultural heritage.

Technological Advancements: Ironically, modern warfare drives technological advancements, as nations invest in research and development to gain a military edge.

Global Impact: Wars in one part of the world can have ripple effects globally, affecting international relations, alliances, and security policies. It is important to note that the impact of modern warfare is highly complex and multifaceted, and efforts to prevent and

mitigate the consequences of armed conflict are of utmost importance. (accessed on 19.10.2023)

Prof. Farida Khanam

गुज़रा हुआ ज़माना

क़ुरआन की सूरह अल-अस्र का तर्जुमा यह है—

> "क़सम है ज़माने की। बेशक इंसान बड़े ख़सारे में है, सिवा उन लोगों के, जो ईमान लाए और उन्होंने नेक अमल किया और एक-दूसरे को हक़ की नसीहत की और एक-दूसरे को सब्र की नसीहत की।" (क़ुरआन, 103:1-3)

अस्र का मतलब है— गुज़रा हुआ ज़माना। 'गुज़रते हुए' ज़माने में इंसान एक 'ठहरी हुई' मख़्लूक़ है। वह बाक़ी कायनात के सरगर्म क़ाफ़िले के साथ लाज़िमी तौर पर बँधा हुआ नहीं है। इंसानी ज़िंदगी की यह आज़ाद नौइयत बताती है कि इस दुनिया में कामयाबी के लिए आदमी को अपने इरादे के तहत कोशिश करनी है, जबकि नाकामी उसकी तरफ़ अपने आप चली आ रही है।

एक बुज़ुर्ग ने कहा कि सूरह अल-अस्र का मतलब मैंने एक बर्फ़ बेचने वाले से समझा, जो बाज़ार में आवाज़ लगा रहा था कि लोगो! इस शख़्स पर रहम करो, जिसका असासा घुल रहा है। लोगो! उस शख़्स पर रहम करो, जिसका असासा घुल रहा है। उसकी पुकार को सुनकर मैंने अपने दिल में कहा कि जिस तरह बर्फ़ पिघलकर कम होता रहता है, उसी तरह इंसान को मिली हुई उम्र भी तेज़ी से गुज़र रही है। उम्र का मौक़ा अगर बे-अमली या बुरे कामों में खो दिया जाए तो यही इंसान का घाटा है (तफ़्सीर राज़ी, जिल्द 32, सफ़्हा 278)।

इंसान अपनी गुज़रती हुई उम्र के साथ आख़िरत के अबदी अंजाम की तरफ़ चला जा रहा है। वह ऐसे फ़ैसलाकुन मुस्तक़बिल की तरफ़ बढ़ रहा है, जहाँ कामयाबी सिर्फ़ उस शख़्स के लिए है, जिसने अपने अमल से इसका इस्तेहक़ाक़ पैदा किया हो। जो शख़्स अमली इस्तेहक़ाक़ के बग़ैर वहाँ पहुँचे, उसके लिए आख़िरत के दिन अबदी बरबादी के सिवा और कुछ नहीं।

मौजूदा दुनिया एक इंतिहाई मुकम्मल दुनिया है। यहाँ इंतिहाई बा-मअनी क़िस्म की सरगर्मियाँ जारी हैं और यह सब कुछ एक पाबंद निज़ाम के तहत हो रहा है। वसीअ (vast) कायनात अपने बेशुमार हिस्सों के साथ एक ज़बरदस्त ख़ुदाई क़ानून में जकड़ी हुई है। वही हर चीज़ को ठीक करने पर मजबूर है, जिसके लिए उसे बनाया गया है, मगर इंसान का मामला बिलकुल मुख़्तलिफ़ है। इंसान— दूसरी तमाम चीज़ों के बरअक्स— बिलकुल आज़ाद है यानी इंसान की फ़लाह भी तमामतर इसी में है कि वह बाक़ी कायनात का हम-सफ़र बन जाए। हालाँकि अल्लाह के मंसूबा-ए-तख़्लीक़ के मुताबिक़, कायनाती तरीक़े को इख़्तियार करने या न करने का मामला तमामतर उसकी अपनी मर्ज़ी पर मुनहसिर है, वह चाहे तो इसे अपनाए और चाहे तो न अपनाए।

कायनात के मुक़ाबले में इंसान की मिसाल ऐसी है, जैसे ट्रेन के मुक़ाबले में स्टेशन पर खड़े हुए मुसाफ़िर की। ट्रेन अपने तमाम अज्ज़ा समेत इंजन के साथ भागी चली जा रही है। ट्रेन का हर डिब्बा इंजन से बँधा हुआ रेल की पटरी पर दौड़ रहा है, मगर मुसाफ़िर और डिब्बे में यह फ़र्क़ है कि डिब्बा तो इंजन से बँधा हुआ अपने आप चला जा रहा है, मगर इंसान उस वक़्त ट्रेन का मुसाफ़िर बनता है, जबकि वह बिल-क़स्द (intentionally) अपने आपको उसके अंदर दाख़िल करके उसका शरीक-ए-सफ़र बनने पर राज़ी हो जाए। गोया इंसान को

ट्रेन का हम-सफ़र बनने के लिए तो इरादी अमल की ज़रूरत है, मगर ट्रेन से बिछड़ने के लिए किसी अमल की ज़रूरत नहीं। बिछड़ने का वाक़या अपने आप हो रहा है— ठीक वैसे ही, जैसे बर्फ़ पिघलकर ख़त्म होने का वाक़या अपने आप हो रहा है, मगर उसे बेचकर उससे नफ़ा हासिल करने के लिए सोचे-समझे अमल की ज़रूरत है या जैसे किसी तालिब-ए-इल्म के इम्तिहान में नाकाम होने के लिए तो सिर्फ़ इतनी बात काफ़ी है कि वह कुछ न करे, लेकिन अगर वह कामयाब होना चाहता है तो ज़रूरी है कि वह इम्तिहान के निज़ाम में अपने आपको शरीक करे और उन तक़ाज़ों को पूरा करे,जिन्हें तालीम के ज़िम्मेदारों ने मुक़र्रर किया है।

इंसान की ज़िंदगी का ज़्यादा बड़ा हिस्सा वह है, जो मौत के बाद शुरू होने वाला है। मौत से पहले की ज़िंदगी उसके पूरे अर्सा-ए-हयात (life) का महज़ एक इब्तिदाई वक़्फ़ा है। यही मुख़्तसर वक़्त इंसान का असल सरमाया है, क्योंकि इसी पर उसकी आइंदा आने वाली तवीलतर ज़िंदगी का फ़ैसला होना है। इस महदूद मुद्दत को सही तौर पर इस्तेमाल करना इंतिहाई ज़रूरी है। इसमें मामूली ग़फ़लत भी ऐसे नुक़सान की सूरत में इंसान को भुगतनी पड़ेगी, जिसकी कभी तलाफ़ी न हो सकेगी। इसे सही इस्तेमाल करने वाला कौन है? यह वह शख़्स है, जो मौजूदा दुनिया में तीन बातों का सबूत दे सके। एक वह, जिसे ईमान कहा जाता है यानी हक़ीक़त का शऊर और उसका एतिराफ़। दूसरा, अमल-ए-सालेह यानी वही करना, जो ख़ालिक़ की स्कीम ऑफ थिंग्स के मुताबिक़ दुरुस्त हो और वह न करना, जो ख़ालिक़ की स्कीम ऑफ थिंग्स के मुताबिक़ दुरुस्त न हो। तीसरा, हक़ और सब्र की नसीहत यानी सच्चाई की समझ इतनी गहरी हो कि आदमी उसका दाई और मुबल्लिग़ (preacher) बन जाए।

एक हदीस

एक हदीस-ए-क़ुदसी इन अलफ़ाज़ में आई है—

إِذَا أَحَبَّ عَبْدًا نَادَى جِبْرِيلَ: إِنَّ اللهَ قَدْ أَحَبَّ فُلاَنًا فَأَحِبَّهُ، فَيُحِبُّهُ جِبْرِيلُ، ثُمَّ يُنَادِي جِبْرِيلُ فِي السَّمَاءِ: إِنَّ اللهَ قَدْ أَحَبَّ فُلاَنًا فَأَحِبُّوهُ، فَيُحِبُّهُ أَهْلُ السَّمَاءِ، وَيُوضَعُ لَهُ القَبُولُ فِي أَهْلِ الأَرْضِ.

"बेशक अल्लाह तआला जब किसी बंदे से मोहब्बत करता है, वह जिब्रील को कहता है कि बेशक अल्लाह ने फ़ुलाँ से मोहब्बत की है, तो तुम भी उससे मोहब्बत करो, तो जिब्रील उससे मोहब्बत करते हैं। फिर जिब्रील आसमान में आवाज़ लगाते हैं कि बेशक अल्लाह ने फ़ुलाँ से मोहब्बत की है, तो तुम लोग उससे मोहब्बत करो, तो आसमान वाले उससे मोहब्बत करते हैं और उसके लिए ज़मीन में क़ुबूलियत रख दी जाती है।" (सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 7485)

मेरे अंदाज़े के मुताबिक़, यह हदीस लफ़्ज़ी मअनी (literal meaning) में नहीं है, बल्कि वह मिसाल की ज़बान में है। इस वाक़ये को तमसील की ज़बान में बयान किया गया है। असल में इस हदीस में फ़ितरत के एक वाक़ये को तमसील की ज़बान में बयान किया गया है, वह यह है कि जब कोई इंसान ख़ुदा से डरने वाला बन जाता है, तो उसके दिल में अल्लाह के बंदों से मोहब्बत हो जाती है। वह अल्लाह के बंदों के लिए दुआएँ करता है। इस तरह का अमल अगर किसी इंसान के अंदर पैदा हो जाए, तो वह एकतरफ़ा नहीं रहता। वह सफ़र करके दूसरे इंसानों तक पहुँचता है। जब एक तरफ़ से यह वाक़या होता है, तो दूसरे इंसान की तरफ़ से भी इसका पॉज़िटिव रिस्पॉन्स आने लगता

है। इस तरह मोहब्बत का यह अमल फ़ितरी तौर पर दोनों इंसानों के दरमियान जारी हो जाता है। एक शख़्स के दिल में दूसरे के लिए वही जज़्बात पैदा हो जाते हैं, जो दूसरे के अंदर पहले के लिए पैदा हुए थे।

यह एक ऐसा तजुर्बा है, जिसे हर इंसान अपनी ज़िंदगी में कर सकता है। जब भी एक शख़्स के दिल में दूसरे शख़्स के लिए इस तरह के सच्चे जज़्बात पैदा हो जाएँ, तो यह जज़्बा एक जगह नहीं ठहरेगा, बल्कि वह सफ़र करेगा। मुझे अपनी ज़िंदगी में ऐसे बाज़ वाक़यात मालूम हैं, जो मुझे ज़ाती तौर पर इस हक़ीक़त को यक़ीन के दर्जे तक पहुँचाते हैं।

इल्म और तक़्वा

सूरह अल-बक़रा में फ़रमाया गया है—

وَاتَّقُوااللهَ وَيُعَلِّمُكُمُ اللّٰهُ.

"अल्लाह से डरो और अल्लाह तुम्हें तालीम देता है।"

(क़ुरआन, 2:282)

इससे मालूम हुआ कि इल्म का तक़्वे से बहुत गहरा ताल्लुक़ है। हक़ीक़त यह है कि इल्म और दुरुस्त फ़िक्र दोनों एक-दूसरे से अलग हैं। आदमी के पास अगर इल्म या मालूमात का ज़खीरा हो तो इसका मतलब यह नहीं कि वह दुरुस्त फ़िक्र या सही सोच का भी हामिल होगा।

असल यह है कि उलूम-ए-क़तईया (exact sciences) में रियाज़ियात (mathematical science) और तजरिबात (experiments) के ज़रिए एक यक़ीनी बात सामने आ सकती है, मगर जहाँ तक उलूम-ए-ज़न्निय्या (speculative sciences) का ताल्लुक़ है, उनमें इस क़िस्म की क़तइय्यत (certainty) मुमकिन नहीं। इस दूसरी

क़िस्म के इल्म में सही फ़िक्र के लिए ऑनेस्टी (honesty) लाज़िमी तौर पर ज़रूरी होती है। तक़्वा आदमी के अंदर यही ऑनेस्टी पैदा करता है। यह ऑनेस्टी इस बात की ज़मानत बन जाती है कि आदमी का इल्म उसे ना-दुरुस्त तर्ज़-ए-फ़िक्र से बचा ले।

ख़ालिक़ ने इंसान को ला-महदूद फ़िक्री सलाहियत के साथ पैदा किया है, लेकिन फ़िक्री अमल को दुरुस्त तौर पर जारी करने के लिए एक फ़िक्री गाइड (intellectual guide) दरकार है। क़ुरआन इसी क़िस्म का एक फ़िक्री गाइड है, जो इस बात की गारंटी देता है कि इंसान का फ़िक्री अमल (intellectual process) भटके बग़ैर दुरुस्त सिम्त में जारी रहे। इस्लाम की दरयाफ़्त के बाद इंसान की ज़िंदगी में एक नया तफ़्कीरी अमल शुरू हो जाता है। उसके अंदर एक इर्तिक़ा-याफ़्ता ज़ेहन (developed mind) तैयार होता है। इस तरह आदमी इस क़ाबिल हो जाता है कि चीज़ों को दुरुस्त ज़ाविया-ए-नज़र (point of view) से देख सके।

तक़्वा (ख़ौफ़-ए-ख़ुदा) तकब्बुर और ग़ुरूर का क़ातिल है। तक़्वा आदमी के अंदर अनानियत (egoism) का ख़ात्मा कर देता है। तक़्वा आदमी को किब्र और ख़ुद-पसंदी से बचा लेता है। तक़्वा आदमी के अंदर यह सलाहियत पैदा करता है कि वह बेझिझक होकर सोचे और ग़ैर-जानिबदाराना (unbiased) अंदाज़ में अपनी राय क़ायम कर सके। यही वजह है कि तक़्वे को इल्म-ए-सहीह का ज़रिया बताया गया है।

जन्नत का मुसाफ़िर

ख़ुदा का मुतालबा यह है कि बंदा अपने तमाम असासे को ख़ुदा के हवाले कर दे। इसके मुआवज़े में ख़ुदा ने आख़िरत में अपनी जन्नत का वादा किया है (अत-तौबा, 9:111)।

आदमी अकसर अपने आपको बचाकर रखता है और इसके जवाब में दुश्वारियों की एक फ़ेहरिस्त पेश कर देता है, मगर हक़ीक़त यह है कि यही दुश्वारियाँ वह क़ीमती मौक़े हैं, जिनको उज्र न बनाकर वह अपने रब को ख़ुश कर सकता है। आदमी जिन मसाइल की बिना पर अल्लाह की तरफ़ बढ़ने से रुकता है, वही दरअसल उसके लिए अबदी जन्नत में तरक़्क़ी के ज़ीनें होते हैं। ये दुश्वारियाँ इसलिए नहीं हैं कि आदमी उनको देखकर रुक जाए, वे इसलिए हैं, ताकि आदमी उनकी परवाह किए बग़ैर जन्नत के लिए आगे बढ़े। वह उनको ख़ुदा तक पहुँचने का ज़ीना बनाए।

ख़ुदा के नज़दीक उसका सबसे महबूब बंदा वह है, जो अपनी तमन्नाओं को ख़ुदा के लिए दफ़न कर दे, जो अपने आराम को उसकी ख़ातिर छोड़ दे, जो अपनी मुश्किलात को नज़र-अंदाज़ करके उसकी तरफ़ बढ़ जाए। किसी इंसान के लिए हक़ीक़ी कामयाबी यह नहीं है कि वह इस दुनिया में कुछ हासिल कर ले, बल्कि कामयाब दरअसल वह है, जो ख़ुदा की राह में अपना सब कुछ पेश कर दे।

सबसे ज़्यादा सेहतमंद वह है, जिसकी सेहत ख़ुदा की राह में बरबाद हो गई हो। सबसे ज़्यादा साहिब-ए-माल वह है, जो ख़ुदा की ख़ातिर बे-माल हो जाए। सबसे ज़्यादा बुलंद मर्तबा वह है, जो ख़ुदा के लिए बे-मर्तबा हो गया हो। सबसे ज़्यादा ख़ुशनसीब वह शख़्स है, जो इस दुनिया के अंदर अपने रब की ख़ातिर बिलकुल लुटा हुआ हो, फिर वह उसके पास पहुँचे, क्योंकि उसका रब अपनी रहमतों को उसके ऊपर उड़ेल देगा। इस हक़ीक़त को सहाबा-ए-रसूल अबूज़र ग़िफ़ारी रज़ियल्लाहु अन्हु ने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से इन अलफ़ाज़ में नक़ल किया है कि दुनिया से ज़ुहद (बे-रग़बती) यह है कि जो कुछ तुम्हारे हाथ में है, उससे ज़्यादा भरोसा

तुम्हें उस पर हो, जो अल्लाह के हाथ में है और जब तुम पर कोई मुसीबत आए, तो सवाब की बिना पर इसका बाक़ी रहना तुम्हारे लिए ज़्यादा पसंदीदा बन जाए (सुनन इब्न माजा, हदीस नंबर 4100)।

सफ़र-ए-मारिफ़त

इंसान के ज़ेहन में पैदाइश के बाद शऊरी या ग़ैर-शऊरी तौर पर सबसे पहले जो ख़्याल आता है, वह यह है कि इंसान का ख़ालिक़ कौन है? इसी तसव्वुर को लेकर तक़रीबन पाँच हज़ार साल पहले फ़लसफ़ियाना ग़ौर-ओ-फ़िक्र का आग़ाज़ हुआ। तारीख़ बताती है कि दुनिया के तमाम बड़े-बड़े दिमाग़ इस ग़ौर-ओ-फ़िक्र में मशग़ूल हुए, लेकिन अजीब बात है कि फ़लसफ़ियाना ग़ौर-ओ-फ़िक्र किसी फ़लसफ़ी को अपने सवाल के जवाब तक न पहुँचा सका। ब्रिटिश फ़लसफ़ी बर्ट्रेंड रसेल (1872–1970) एक मशहूर फ़लसफ़ी था। वह अपनी सारी उम्र इस मौज़ू के मुताले में मशग़ूल रहा, मगर सारी उम्र के मुताले के बावजूद उसे अपने सवाल का जवाब नहीं मिला। उसके एक कमेंटेटर ने इसके बारे में दुरुस्त तौर पर लिखा है—

> “Bertrand Russell was a philosopher of no philosophy.”

हक़ीक़त यह है कि यह बात तमाम फ़लसफ़ियों के बारे में दुरुस्त है। हर फ़लसफ़ी अमलन फ़िलोसॉफ़र ऑफ़ नो फ़िलोसॉफ़ी था। हर फ़लसफ़ी का मौज़ू यह था कि वह सच्चाई क्या है, इस सवाल का जवाब फ़लसफ़ियाना फ्रेमवर्क में मालूम करे, मगर कोई भी फ़लसफ़ी अपनी इस तलाश में कामयाब नहीं हुआ। सच्चाई का फ़लसफ़ियाना जवाब हज़ारों साल की तलाश के बावजूद नामालूम रहा।

ऐसा क्यों हुआ? इसका सबब यह था कि इंसान ने सवाल को तो जाना, लेकिन वह इससे बेख़बर रहा कि इस सवाल का जवाब पाने के लिए सही तरीक़ा-ए-मुताला (methodology) क्या है। हालाँकि जितनी अहमियत किसी सवाल की है, उतनी ही अहमियत उस सवाल का जवाब पाने के लिए सही तरीक़ा-ए-मुताला (methodology) की है।

लेखक को इस सवाल का जवाब क़ुरआन में मिला है। हक़ीक़त यह है कि हज़रत मूसा अलैहिस्सलाम के ज़रिए अल्लाह रब्बुल आलमीन ने इस मेथोडोलॉजी को इशारे की ज़बान में बता दिया था, लेकिन कोई आलिम या फ़लसफ़ी उसे मुतअय्यन (fixed) तौर पर जान न सका। क़ुरआन का जवाब सूरह अल-आराफ़ में इस तरह मिलता है। पैग़ंबर मूसा मिस्र से निकलने के बाद जब सीना-ए-सहरा (Mount Sinai) में पहुँचे, तो वहाँ माउंट सिनाई के मक़ाम पर उन पर एक तजुर्बा गुज़रा। पैग़ंबर मूसा के ऊपर यह तजुर्बा एक अंदाज़े के मुताबिक़ पंद्रहवीं सदी मसीह से पहले के दूसरे हिस्से में गुज़रा। इस वाक़ये का ज़िक्र क़ुरआन में इन अलफ़ाज़ में आया है—

وَلَمَّا جَاءَ مُوسَى لِمِيقَاتِنَا وَكَلَّمَهُ رَبُّهُ قَالَ رَبِّ أَرِنِي أَنْظُرْ إِلَيْكَ قَالَ لَنْ تَرَانِي وَلَكِنِ انْظُرْ إِلَى الْجَبَلِ فَإِنِ اسْتَقَرَّ مَكَانَهُ فَسَوْفَ تَرَانِي فَلَمَّا تَجَلَّى رَبُّهُ لِلْجَبَلِ جَعَلَهُ دَكًّا وَخَرَّ مُوسَى صَعِقًا فَلَمَّا أَفَاقَ قَالَ سُبْحَانَكَ تُبْتُ إِلَيْكَ وَأَنَا أَوَّلُ الْمُؤْمِنِينَ.

“और जब मूसा हमारे वक़्त पर आ गया और उसके रब ने उससे कलाम किया, तो उसने कहा— मुझे अपने को दिखा दे कि मैं तुझको देखूँ। फ़रमाया कि तुम मुझे हरगिज़ नहीं देख सकते, अलबत्ता पहाड़ की तरफ़ देखो। अगर वह अपनी जगह

क़ायम रह जाए तो तुम भी मुझको देख सकोगे। फिर जब उसके रब ने पहाड़ पर अपनी तजल्ली डाली, तो उसे रेज़ा-रेज़ा कर दिया और मूसा बेहोश होकर गिर पड़ा। फिर जब होश आया तो बोला— तू पाक है, मैंने तेरी तरफ़ रुजू किया और मैं सबसे पहले ईमान लाने वाला हूँ।" (क़ुरआन, 7:143)

पैग़ंबर मूसा के इस तजुर्बे में एक इल्मी हक़ीक़त को बताया गया है। वह यह कि इंसान मौजूदा दुनिया में ख़ुदा को बराह-ए-रास्त तौर पर नहीं देख सकता। अल्लाह रब्बुल आलमीन को देखने की सूरत सिर्फ़ एक है। वह यह कि इंसान मख़्लूक़ात में ग़ौर-ओ-फ़िक्र करके इस्तिंबात (inference) के ज़रिए उसके ख़ालिक़ को दरयाफ़्त करे। यही वह नुक्ता है, जिसकी वजह से इल्म-ए-हक़ीक़त का सफ़र अपनी मंज़िल तक न पहुँच सका। ख़ालिक़ और मख़्लूक दोनों एक नहीं हैं, बल्कि दोनों मुकम्मल तौर पर एक-दूसरे से अलग हैं। लिहाज़ा इस मामले में सही मेथोडोलॉजी सिर्फ़ यह है कि इंसान पहले यह दरयाफ़्त करे कि ख़ालिक़ और मख़्लूक दोनों अलग-अलग हैं और फिर मख़्लूक यानी कायनाती निशानियों में ग़ौर-ओ-फ़िक्र करके ब-ज़रिए इस्तिंबात ख़ालिक़ को दरयाफ़्त करे, मगर यहाँ यह वाक़या इंसान के लिए एक रुकावट बना रहा कि उसे यह तरीक़ा मालूम न था कि वह ख़ालिक़ को अलग करके मख़्लूक को किस तरह दरयाफ़्त करे।

यह डी-लिंकिंग (delinking) का मामला था यानी ज़रूरत थी कि इंसान ख़ालिक़ के मुताला और मख़्लूक के मुताले को एक-दूसरे से डी-लिंक करे, मगर इंसान को क़दीम ज़माने में यह मालूम न था कि वह डी-लिंकिंग की पॉलिसी को अमलन किस तरह इख़्तियार करे। यह वाक़या इटली के साइंस-दाँ गैलीलियो गैलिली (वफ़ात : 1642) ने अंजाम दिया। जर्मन साइंस-दाँ अल्बर्ट आइंस्टीन (1879-1955) ने दुरुस्त तौर पर लिखा है कि गैलीलियो जदीद साइंस का बानी था—

"Galileo was the father of modern science."

आइंस्टीन की इस बात का मतलब यह है कि गैलीलियो से पहले साइंस ब-यक-वक़्त दो क़िस्म के ख़्यालात में उलझी हुई थी यानी हक़ीक़त का क़ाबिल-ए-मुशाहदा पहलू (observable aspect) और नाक़ाबिल-ए-मुशाहदा पहलू (non-observable aspect)। दूसरे लफ़्ज़ों में, कैफ़ियाती (quantitative) पहलू और क़ीमती (qualitative) पहलू। गैलीलियो ने दोनों को एक-दूसरे से डी-लिंक कर दिया। नाक़ाबिल-ए-मुशाहदा पहलू को फ़लसफ़ियाना तलाश के खाने में रखा और क़ाबिल-ए-मुशाहदा पहलू को साइंस की तलाश के दायरे में डाल दिया। इससे पहले साइंस का सफ़र गोया एक बंद दरवाज़े में रुका हुआ था, गैलीलियो ने इस बंद दरवाज़े को खोल दिया।

गैलीलियो इस दरयाफ़्त तक किस तरह पहुँचा? इसका भी एक सबब था। गैलीलियो के ज़माने में दूरबीन (telescope) इब्तिदाई तौर पर दरयाफ़्त हुई। गैलीलियो ने पहली बार 1610 में इसके ज़रिए सय्यारों की गर्दिश का सीधे तौर पर मुताला किया। इस तरह शम्सी निज़ाम (solar system) के बराह-ए-रास्त मुताले का आग़ाज़ हुआ। इसी के साथ साइंस का एक नया दौर शुरू हो गया, जिसमें पूरी फ़िज़िकल वर्ल्ड एक क़ाबिल-ए-मुताला चीज़ बन गई।

इस एतिबार से गैलीलियो न सिर्फ़ फादर ऑफ़ मॉडर्न साइंस है, बल्कि वह बिल-वास्ता तौर पर फादर ऑफ़ मॉडर्न इल्म-ए-कलाम भी है, क्योंकि गैलीलियो से पहले इल्म-ए-कलाम सिर्फ़ टेक्निकल बहसों में उलझा हुआ था, वह किसी हक़ीक़त को दरयाफ़्त नहीं कर पाया था, लेकिन गैलीलियो के बाद यह मुमकिन हो गया कि इल्म-ए-कलाम को एक नए दौर में पहुँचाया जा सके यानी वह दौर, जिसे क़ुरआन में हक़ को स्पष्ट रूप से उजागर करने का दौर बताया गया है। इस सिलसिले में क़ुरआन की आयत (41:53) का तर्जुमा यह है— "अनक़रीब हम उन्हें

अपनी निशानियाँ दिखाएँगे, आफाक़ में भी और ख़ुद उनके अंदर भी, यहाँ तक कि उन पर ज़ाहिर हो जाएगा कि यह हक़ है।"
(इल्म-ए-कलाम की तफ़्सील के लिए देखिए, माहनामा अल-रिसाला, अप्रैल, 1978; ब-उन्वान : इल्म-ए-कलाम की हक़ीक़त)

जदीद साइंसी दौर से पहले इंसान कायनाती निशानियों के बारे में बहुत कम जानता था। चुनाँचे क़दीम ज़माने में मारिफ़त-ए-आला तक पहुँचने के लिए फ्रेमवर्क ही मौजूद न था। मौजूदा ज़माने में साइंसी इंक़लाब के बाद इंसान को आला फ्रेमवर्क हासिल हुआ। इसी इंक़लाब का यह नतीजा है कि बीसवीं सदी में इल्म-ए-इलाहियात (theology) में बहुत-सी निहायत क़ाबिल-ए-क़द्र किताबें लिखी गई हैं। इनमें से एक नुमाइंदा किताब वह है, जिसका अरबी तर्जुमा इस मअनी-खेज़ उन्वान के साथ छपा है— الله يتجلى فى عصر العلم

असल किताब का अंग्रेज़ी टाइटल हस्ब-ए-ज़ैल है—

The Evidence of God in an Expanding Universe

इस एतिबार से ग़ालिबन यह कहना सही होगा कि इल्म-ए-इलाहियात या इल्म-ए-कलाम के मामले में गैलीलियो गैलिली का कारनामा एक ताईदी (supporting) कारनामा है। ग़ालिबन इसी ताईद का ज़िक्र हदीस में इन अलफ़ाज़ में आया है—

إِنَّ اللّٰهَ لَيُؤَيِّدُ هَذَا الدِّينَ بِالرَّجُلِ الفَاجِرِ.

"अल्लाह तआला ज़रूर इस दीन की ताईद फ़ाजिर इंसान के ज़रिए करेगा।"

(मुस्नद अल-शिहाब अल-क़दाई, हदीस नंबर 1096)

मेरा क़यास है कि यहाँ 'अल-रजुल अल-फ़ाजिर' से मुराद सेक्युलर इंसान है और यह सेक्युलर इंसान ग़ालिबन गैलीलियो गैलिली था। वल्लाहु आलम बिस्सवाब! गैलीलियो गैलिली की इस दरयाफ़्त

के बाद ब-यक-वक़्त इल्म के दो दरवाज़े खुले। एक दरवाज़ा था— फ़िज़िकल साइंस का डेवलपमेंट और दूसरा दरवाज़ा था— इल्म-ए-इलाहियात का दरवाज़ा, जो इससे पहले फ़लसफ़ों की पेचीदा बहसों में फँसा हुआ था। इसे एक तस्लीमशुदा इल्मी बुनियाद हासिल हुई। इसके बाद यह मुमकिन हो गया कि इस इल्मी बुनियाद को इस्तेमाल करके इल्म-ए-इलाहियात को मॉडर्न ज़माने में नए अंदाज़ में लिखा जा सके।

तौहीद का आग़ाज़ मारिफ़त (realisation) से होता है यानी कायनाती निशानियों में तदब्बुर-ओ-तफ़क्कुर करके ख़ुदा को ख़ालिक़-ओ-मालिक की हैसियत से दरयाफ़्त करना। क़ुरआन की दूसरी आयतों से मालूम होता है कि अल्लाह की निशानियाँ (signs) इतनी ज़्यादा हैं कि उनकी कोई गिनती नहीं हो सकती। यही वे ला-महदूद कायनाती निशानियाँ हैं, जिन पर तदब्बुर करके इंसान अपने रब की मारिफ़त हासिल करता है। यह तदब्बुर पहले रिवायती फ्रेमवर्क में किया जाता था। गैलीलियो के बाद तदब्बुर का यह अमल साइंसी फ्रेमवर्क में करना मुमकिन हो गया है। इस तरह आज एक इंसान के लिए यह बात आला पैमाने पर मुमकिन हो चुकी है कि वह अल्लाह की बेपायाँ अज़्मत को दरयाफ़्त करके उसके आगे झुक जाए।

मुताला-ए-हदीस

शरह मिश्कात अल-मसाबीह

(हदीस नंबर 96-109)

अब्दुल्लाह बिन उमर रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि एक दिन रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम निकले और उस वक़्त आपके हाथ में दो किताबें थीं। आपने कहा— "क्या तुम जानते हो कि

ये दो किताबें क्या हैं?" हमने कहा— "नहीं, ऐ ख़ुदा के रसूल! इल्ला यह कि आप हमें बताएँ।" फिर आपने दाहिने हाथ वाली किताब की तरफ़ इशारा करते हुए फ़रमाया— "यह एक किताब है, जो रब्बुल आलमीन की तरफ़ से है। इसमें अहले-जन्नत के नाम हैं, उनके बापों के नाम और उनके क़बीलों के नाम हैं। फिर उनकी कुल तादाद आख़िर में दर्ज कर दी है, अब इनमें न कभी ज़्यादती होगी और न कमी। फिर आपने बाएँ हाथ वाली किताब की तरफ़ इशारा करते हुए कहा। यह एक किताब है, जो रब्बुल आलमीन की तरफ़ से है। इसमें अहले-दोज़ख़ के नाम हैं, इसमें बापों के नाम और उनके क़बीलों के नाम हैं। फिर उनकी कुल तादाद आख़िर में दर्ज कर दी है। अब इनमें न कभी ज़्यादती होगी और न कमी।" फिर आपके अस्हाब ने कहा— "ऐ ख़ुदा के रसूल! फिर किस चीज़ में अमल, अगर सब कुछ हो चुका है?" आपने फ़रमाया— "एतिदाल के साथ सीधी राह पर चलने की कोशिश करते रहो (سَدِّدُوا وَقَارِبُوا), क्योंकि जो शख़्स जन्नत का अहल है, उसका ख़ात्मा जन्नत वालों जैसे अमल पर ही होगा, अगरचे वह कोई भी अमल करे और जो शख़्स दोज़ख़ का अहल है, उसका ख़ात्मा दोज़ख़ वालों जैसे अमल पर ही होगा, अगरचे वह कोई भी अमल करे।" फिर रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने अपने दोनों हाथों की तरफ़ इशारा किया और दोनों को एक तरफ़ डाल दिया। फिर आपने फ़रमाया— "तुम्हारा रब अपने बंदों से फ़ारिग़ हो चुका, एक गिरोह जन्नत में और एक गिरोह दोज़ख में।"

(सुनन अल-तिरमिज़ी, हदीस नंबर 2141)

हदीस के ये अलफ़ाज़ (سَدِّدُوا وَقَارِبُوا) बताते हैं कि हदीस का मतलब क्या है— एतिदाल के साथ सीधी राह पर चलने की कोशिश करते रहो। यही साबिराना रविश है। यह किसी आदमी के संजीदा मिज़ाज होने की एक अलामत है। इसका ताल्लुक़ किसी एक मामले

से नहीं है, बल्कि ज़िंदगी के तमाम मामलों से इसका ताल्लुक़ है। जो आदमी अपने क़ौल-ओ-फ़ेल में एतिदाल पर क़ायम रहे, वह इस बात का सबूत देता है कि वह जज़्बातियत से पाक है। वह जब बोलता है, तो सोचकर बोलता है और जब करता है, तो वह सोच-समझकर करता है। वह सतहिय्यत-पसंदी (superficiality) से पाक है। उसका किरदार उसकी अक़्ल के ताबे होता है, न कि उसके जज़्बात के ताबे। ऐसा ही इंसान अपने मक़सद में कामयाब होता है। एक मर्तबा रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने अपने अस्हाब को यह नसीहत की थी— ख़ुद को राह-ए-रास्त पर रखो, बे-एतिदाली से बचो, सुबह-ओ-शाम की इबादत करो और रात के कुछ हिस्से में। मियाना-रवी इख़्तियार करो, मियाना-रवी (moderation)। तुम मंज़िल तक पहुँच जाओगे।

(सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 6463)

रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के हाथ में मौजूद मज़कूरा किताब में दर्ज नामों से मुराद ग़ालिबन ज़ाती नाम नहीं हैं, बल्कि सिफ़ाती नाम हैं। इसका मतलब यह है कि जन्नत और जहन्नम का फ़ैसला जिन सिफ़ात (उसूल) पर किया जाना मुक़र्रर है, उन सिफ़ात पर इसका फ़ैसला होगा। किसी और सिफ़त या किसी और निस्बत की बुनियाद पर किसी के लिए जन्नत या जहन्नम का फ़ैसला होने वाला नहीं है। अब इस मामले में अल्लाह का फ़ैसला बदलने वाला नहीं। चुनाँचे जो इंसान पूरी संजीदगी और एतिदाल के साथ इन सिफ़ात को अपनाने की कोशिश करेगा, उसके बारे में उम्मीद है कि वह ज़रूर अल्लाह की नुसरत और रहमत से जन्नत का मुस्तहिक़ क़रार पाएगा।

अबू ख़ुज़ामा ताबई अपने वालिद से नक़ल करते हैं। वे कहते हैं कि मैंने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से कहा— "ऐ ख़ुदा

के रसूल! वह झाड़-फूँक जो हम कराते हैं और दवा, जिसके ज़रिए हम इलाज करते हैं और हिफ़ाज़ती अस्बाब, जिससे हम अपना बचाव करते हैं, क्या ये अल्लाह की तक़दीर को कुछ बदल देते हैं?" आपने फ़रमाया— "ये ख़ुद अल्लाह की तक़दीर से हैं।"
(सुनन अल-तिरमिज़ी, हदीस नंबर 2065; सुनन इब्न माजा, हदीस नंबर 3437)

हदीस के आख़िरी अलफ़ाज़ (ये ख़ुद अल्लाह की तक़दीर से हैं) से मालूम होता है कि मज़कूरा क़िस्म की हदीसों का मतलब अस्बाब-ए-दुनिया को इख़्तियार करने से रोकना नहीं है, क्योंकि इसके मुताबिक़ ख़ुद अस्बाब में तासीर (effect) भी ख़ुदा की मुक़द्दर की हुई है, वह इन अशिया की ज़ाती सिफ़त नहीं है।

अबू हुरैरा रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम हमारी तरफ़ आए और हम तक़दीर के मसले पर बहस कर रहे थे। आप ग़ज़बनाक हो गए, यहाँ तक कि आपका चेहरा सुर्ख़ हो गया। गोया कि आपके रुख़्सारों पर अनार के दाने निचोड़ दिए गए हों। फिर आपने फ़रमाया— "क्या तुम लोगों को इसी का हुक्म दिया गया है? क्या मैं इसी के साथ तुम्हारे पास भेजा गया हूँ? तुमसे पहले के लोग तबाह कर दिए गए, जबकि उन्होंने इस मामले में बहस की। मैंने तुम्हारे ऊपर लाज़िम किया कि तुम इस मामले में बहस न करो।"

(सुनन अल-तिरमिज़ी, हदीस नंबर 2133)

तक़दीर का मसला एक बेहद नाज़ुक मसला है। इलाहियात के मैदान में क़दीम ज़माने से यह बहस जारी है कि इस दुनिया में इंसान आज़ाद है या मजबूर। बज़ाहिर इंसान इस दुनिया में अपने आपको

आज़ाद पाता है, लेकिन जब ख़ुदा क़ादिर-ए-मुतलक़ है, तो यह बात नाक़ाबिल-ए-क़यास मालूम होती है कि ख़ुदा की क़ुदरत-ए-कामिला के दरमियान इंसान को ख़ुद-मुख्तारी हासिल हो। इस तसव्वुर पर बहुत ज़्यादा लिखा गया है। उर्दू शायर मीर तक़ी मीर (वफ़ात : 1810 ई.) ने इसी बात को इस तरह नज़्म किया है—

नाहक़ हम मजबूरों पर यह तोहमत है मुख़्तारी की,
चाहते हैं सो आप करे हैं, हमको अबस बदनाम किया।

मगर यह एक ग़ैर-माक़ूल (illogical) एतिराज़ है, क्योंकि ख़ुदा को अगर हर क़िस्म का इख़्तियार हासिल है, तो उसे यक़ीनन यह भी इख़्तियार हासिल है कि वह किसी मुक़ाम पर अपनी क़ुदरत को महदूद कर ले। असल यह है कि इंसान अपनी हक़ीक़त के एतिबार से अल्लाह रब्बुल आलमीन के आगे मुकम्मल तौर पर मजबूर मख़्लूक़ है, मगर अल्लाह तआला ने अपने मंसूबा-ए-तख़्लीक़ के तहत अपनी क़ुदरत को वक़्ती तौर पर महदूद कर लिया है और इस सिफ़त-ए-इख़्तियार (क़ुदरत) का एक शम्मा (iota) इंसान को महदूद मुद्दत के लिए बतौर 'अतिया' दे दिया है। मौत गोया इस सिफ़त-ए-इख़्तियार के ख़ात्मे का ऐलान है।

यह 'अतिया' टेस्ट (test) के लिए है यानी इंसान अगर अपने इख़्तियार का ग़लत इस्तेमाल (misuse) करे तो उसकी पकड़ होगी, लेकिन अगर वह इख़्तियार का दुरुस्त इस्तेमाल करे तो उसे इनाम मिलेगा। इसी के साथ इंसान को 'क़लील इल्म' दिया गया है (अल-इसरा, 17:85)। अपनी इस महदूदियत की बुनियाद पर इंसानों के लिए तक़दीर की तफ़्सीली तह तक पहुँचना मुमकिन नहीं है, इसलिए इंसान को चाहिए कि वह इस मामले में मुख़्तसर इल्म पर क़नाअत करे। इस मामले में कुल्ली इल्म का हुसूल उसके लिए मुमकिन नहीं है।

यह क़यास ज़ाहिर है कि एक नज़री क़यास है। ब्लैक होल की दरयाफ़्त ने इस क़यास के लिए ज़ाहिरी सतह पर एक अमली तस्दीक़ फ़राहम कर दी। ब्लैक होल का नज़रिया तक़दीर के मसले में इंसानी इल्म की महदूदियत को क़ाबिल-ए-फ़हम बना रहा है। एम्स्टरडम (नीदरलैंड्स) में माहिरीन-ए-तबीय्यात (physicists) की एक इंटरनेशनल कॉन्फ्रेंस हुई। इस मौक़े पर फ़िज़िक्स का नोबेल प्राइज (1980 ई.) पाने वाले एक साइंस-दाँ मिस्टर जेम्स वॉटसन (James Watson Cronin, 1931-2016) ने अपने मक़ाले में बताया कि हमारी कायनात का 96 फ़ीसद हिस्सा स्याह माद्दा (dark matter) पर मुश्तमिल है। उसकी रोशनी या रेडिएशन हम तक नहीं पहुँचता, इसलिए हम उसे बराह-ए-रास्त तौर पर देख नहीं पाते—

"Dark matter can not be detected directly, because it does not emit or reflect light or radiation."

जेम्स वॉटसन ने मज़ीद कहा कि हम समझते हैं कि हम कायनात को जानते हैं, मगर हक़ीक़त यह है कि हम हर चीज़ के सिर्फ़ 4 फ़ीसद हिस्से को जान सकते हैं—

"We think we understand the universe, but we only understand four percent of everything."
(The Times of India; September 23, 2007, p. 20)

ब्लैक होल का नज़रिया तक़दीर के मसले में इंसानी इल्म की महदूदियत को क़ाबिल-ए-फ़हम बना रहा है।

इब्न माजा ने भी इसी तरह की रिवायत अम्र बिन शुऐब से, उन्होंने अपने वालिद से, उन्होंने अपने दादा से नक़ल की है।

(सुनन इब्न माजा, हदीस नंबर 85)

अबू मूसा अशअरी रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि मैंने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम को यह कहते हुए सुना—

"अल्लाह ने आदम को मुट्ठीभर ख़ाक से पैदा किया। उसे अल्लाह ने सारी ज़मीन से लिया था। पस आदम की औलाद ज़मीन के अंदाज़े पर हुई। उनमें से कुछ सुर्ख़ और कुछ सफ़ेद और कुछ काले और कुछ दरमियानी और कुछ नरम और कुछ सख़्त और कुछ नापाक और कुछ पाक।"

(मुस्नद अहमद, हदीस नंबर 19642; सुनन अल-तिरमिज़ी, हदीस नंबर 2955; सुनन अबू दाऊद, हदीस नंबर 4693)

इंसानी जिस्म जिन चीज़ों से बना है, वह वही है, जिन चीज़ों से ज़मीन बनी है। अलबत्ता इंसान के अंदर जो रूह है, वह ग़ैर-ज़मीनी या ग़ैर-माद्दी है। इंसान को चाहिए कि वह अपने आपको अपने माद्दी वजूद से ऊपर उठाए और अपने आपको एक ग़ैर-माद्दी वजूद की हैसियत से तरक़्क़ी देने की कोशिश करे। वह अपनी रूह को अपनी असल हस्ती समझे और अपने जिस्म को सिर्फ़ एक वक़्ती क़ियामगाह का दर्जा दे।

अब्दुल्लाह बिन अम्र रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि मैंने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम को यह कहते हुए सुना—

"अल्लाह ने अपनी मख़्लूक़ को एक अँधेरे में पैदा किया। फिर उनके ऊपर अपने नूर का एक हिस्सा डाल दिया। फिर जिसने इस नूर में से पाया, वह हिदायतयाब हुआ और जिसने इसे नहीं पाया, वह गुमराह हो गया। इसी बिना पर मैं (अब्दुल्लाह बिन अम्र) यह कहता हूँ कि अल्लाह के इल्म पर क़लम सूख गया है।"

(मुस्नद अहमद, हदीस नंबर 6644; सुनन अल-तिरमिज़ी, हदीस नंबर 2642)

इस हदीस में तम्सीली ज़बान में यह बताया गया है कि इंसान के जिस्मानी वजूद को ज़िंदा रहने के लिए वे अस्बाब काफ़ी हैं, जो ज़मीन पर पाए जाते हैं, मगर इंसान के रूहानी वजूद की बक़ा और इर्तिक़ा सिर्फ़ उस वक़्त मुमकिन है, जबकि उसे ख़ुदा के फ़ैज़ से ख़ुसूसी रब्बानी हिस्सा मिले। "अल्लाह के इल्म पर क़लम सूख गया है" यानी अल्लाह के इल्म की बुनियाद पर क़लम को जो कायनाती मंसूबा लिखना था, वह उसने अल्लाह के हुक्म से लिख दिया है, अब इसमें कोई तब्दीली नहीं होगी। इस हक़ीक़त को क़ुरआन में इस तरह बयान किया गया है—

"अल्लाह की बातों में कोई तब्दीली नहीं।"
(क़ुरआन, 10:64)

अनस बिन मालिक रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम अकसर यह कहते थे—

يَا مُقَلِّبَ الْقُلُوبِ ثَبِّتْ قَلْبِي عَلَى دِينِكَ.

ऐ दिलों के पलटने वाले, मेरे दिल को अपने दीन पर जमा दे।

मैंने कहा कि ऐ ख़ुदा के रसूल! हम आप पर ईमान लाए हैं और जो कुछ आप लाए हैं, उस पर भी। फिर क्या आप हमारे ऊपर अंदेशे करते हैं? आपने फ़रमाया कि हाँ। लोगों के दिल ख़ुदा की उँगलियों के दरमियान हैं। वह उनको उलटता पलटता है, जैसा कि वह चाहता है। (सुनन अल-तिरमिज़ी, हदीस नंबर 2140; सुनन इब्न माजा, हदीस नंबर 3834)

मौजूदा दुनिया में इंसान को मुकम्मल तौर पर एक आज़ाद मख़्लूक़ की हैसियत से पैदा किया गया है, मगर उसी के साथ दूसरी हक़ीक़त

यह है कि इंसान अपनी सलाहियत के एतिबार से आख़िरी हद तक एक आजिज़ मख़्लूक़ है। इस 'इज्ज़' की बिना पर हर वक़्त उसके लिए अंदेशे हैं कि कोई भी चीज़ उसे हक़ से हटा दे। यही 'इज्ज़' का एहसास आदमी को मजबूर करता है कि वह ख़ुदा से बार-बार हक़ पर साबित-क़दमी की दुआ करता रहे।

इस हक़ीक़त को एक दूसरी हदीस-ए-रसूल में इस तरह बयान किया गया है—

عَنْ عَائِشَةَ، عَنِ النَّبِيِّ صلى الله عليه وسلم قَالَ:سَدِّدُوا، وَقَارِبُوا، وَأَبْشِرُوا؛فَإِنَّهُ لَا يُدْخِلُ أَحَدًا الْجَنَّةَ عَمَلُهُ قَالُوا:وَلَا أَنْتَ يَا رَسُولَ اللهِ؟ قَالَ:وَلَا أَنَا، إِلَّا أَنْ يَتَغَمَّدَنِي اللهُ بِمَغْفِرَةٍ وَرَحْمَةٍ.

"रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया कि अपना रवैया दुरुस्त रखो और मियाना-रवी पर क़ायम रहो और पुर-उम्मीद रहो, क्योंकि किसी भी शख़्स को उसका अमल जन्नत में दाख़िल नहीं करेगा। लोगों ने कहा कि क्या आपको भी नहीं ऐ ख़ुदा के रसूल! आपने फ़रमाया कि हाँ, मुझे भी नहीं, इल्ला यह कि अल्लाह मुझे अपनी मग़फ़िरत और रहमत से ढाँप ले।"

(सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 6467)

इन दोनों हदीसों को मिलाकर पढ़ा जाए तो इसका मतलब यह होगा कि अल्लाह की रहमत और मग़फ़िरत के हुसूल के लिए अपनी कोशिश के साथ-साथ अल्लाह तआला से साबित-क़दमी की दुआ करते रहना चाहिए।

अबू मूसा अशअरी रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया—

> "दिल की मिसाल ऐसे पर (feather) की है, जो एक खुले मैदान में हो। उसे हवाएँ ऊपर-नीचे उलट-पलट कर रही हों।"
>
> (मुस्नद अहमद, हदीस नंबर 19758)

इंसान अगर अपने वजूद और इस अथाह कायनात के दरमियान तुलना करे तो उसे यह मालूम होगा कि ला-महदूद तौर पर वसीअ कायनात में उसकी हैसियत एक इंतिहाई आजिज़ मख़्लूक़ की है। इसी तरह फ़िक्री एतिबार से भी वह बेहद कमज़ोर है यानी हर लम्हा वह शैतान के हमलों के निशाने पर रहता है। ऐसी हालत में वही इंसान शैतान के फ़ित्नों से बच सकता है, जिसका शऊर पूरी तरह ज़िंदा हो और इसी के साथ वह मुसलसल ख़ुदा से उसकी मदद माँगता रहे।

अली बिन अबी तालिब रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया—

> "कोई शख़्स मोमिन नहीं बन सकता, जब तक वह चार चीज़ों पर ईमान न लाए। वह गवाही दे कि अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं और यह कि मैं अल्लाह का पैग़ंबर हूँ, उसने मुझे हक़ के साथ भेजा है और वह ईमान लाए मौत पर और मौत के बाद दोबारा उठाए जाने पर और वह ईमान लाए तक़दीर पर।"
>
> (सुनन अल-तिरमिज़ी, हदीस नंबर 2145; सुनन इब्न माजा, हदीस नंबर 81)

ईमान यह है कि आदमी दिल से यह यक़ीन करे कि ज़िंदगी के सवालात का सही जवाब वही है, जो ख़ुदा के नज़दीक उनका सही जवाब है और यह जवाब इंसान को ख़ुदा के पैग़ंबर के वास्ते से मिलता

है, न कि सीधे तौर पर। क़ुरआन इस सिलसिले में गाइड बुक की हैसियत रखता है। क़ुरआन में ख़ुदा की मतलूब ज़िंदगी के बुनियादी उसूल बता दिए गए हैंऔर हदीस में इसकी तफ़्सील मौजूद है।

अब्दुल्लाह बिन अब्बास रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया—

"मेरी उम्मत में दो क़िस्म के लोग हैं, जिनका इस्लाम में कोई हिस्सा नहीं— मुरजिया और क़दरिया।"

(सुनन अल-तिरमिज़ी, हदीस नंबर 2149)

मुरजिया से मुराद जबरिया हैंयानी वे लोग हैं, जो बंदे को मजबूर महज़ मानें यानी जो काम भी इंसान करता है, वह अल्लाह की क़ुदरत के तहत करता है। इसमें बंदे का कोई इख़्तियार शामिल नहीं होता। इसके मुक़ाबले में क़दरिया से मुराद वे लोग हैं, जो यह मानते हैं कि इंसान अपने हर अमल का ख़ुद ख़ालिक़ है, वह हर अमल ख़ुद अपनी क़ुदरत से करता है। इसमें अल्लाह की क़ुदरत का कोई दख़्ल नहीं है। ये दोनों नज़रिये इंतिहा-पसंदी पर मबनी हैं। पहला नज़रिया-ए-जबर में इंतिहा-पसंदी की पैदावार है और दूसरा नज़रिया-ए-इख़्तियार में इंतिहा-पसंदी का, जबकि असल हक़ीक़त इन दोनों के दरमियान है। इसी इंतिहा-पसंदी का नाम ग़ुलू है और ग़ुलू आदमी को ख़ुदा के दीन से हटाकर ख़ुद-साख़्ता दीन पर खड़ा कर देता है।

अब्दुल्लाह बिन उमर रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि मैंने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम को यह कहते हुए सुना—

"मेरी उम्मत में भी ख़स्फ़ (ज़मीन में धँसना) और मस्ख़ (सूरत

का बिगड़ जाना) होगा और यह उन लोगों पर होगा, जो तक़दीर को झुठलाएँगे।"

(सुनन अबू दाऊद, हदीस नंबर 4613; सुनन अल-तिरमिज़ी, हदीस नंबर 2152)

तक़दीर को झुठलाना इतना बड़ा जुर्म इसलिए है कि ऐसा आदमी गोया ख़ुदा की क़ुदरत और उसके इल्म का इनकार करता है। वह ख़ुदा को मानते हुए भी ख़ुदा को उसका हक़ीक़ी दर्जा नहीं देता।

अब्दुल्लाह बिन उमर रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया—

"क़दरिया इस उम्मत के मजूस हैं। पस अगर वे बीमार हों, तो उनकी इयादत को मत जाओ और अगर मरें, तो उनके जनाज़े में शिरकत न करो।"

(मुस्नद अहमद, हदीस नंबर 5584; सुनन अबू दाऊद, हदीस नंबर 4691)

क़दरिया वे लोग हैं, जो यह अक़ीदा रखते हैं कि बंदा अपना हर अमल ख़ुद अपनी क़ुदरत से करता है, ख़ुदा की क़ुदरत का इसमें कोई दख़्ल नहीं। ऐसे लोगों की समानता मजूस (Zoroastrians) से है कि मजूस ख़ुदा के वजूद को दो ज़ातों में तक्सीम करते हैं। इसी तरह मज़कूरा अक़ीदे को रखने वाले लोग गोया ख़ुदा को उसकी क़ुदरत से अलग कर रहे हैं। जैसे वे दो क़ादिर मान रहे हैं—एक ख़ुदा और दूसरा इंसान।

उमर बिन ख़त्ताब रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया—

"तुम लोग अहल-ए-क़द्र के साथ उठना-बैठना न रखो और न ही उनके साथ कलाम करो।"

(सुनन अबू दाऊद, हदीस नंबर 4710)

अहल-ए-क़द्र से मुराद वे लोग हैं, जो तक़दीर-ए-इलाही के इनकारी हैं और तक़दीर के उन मसाइल में बहुत ज़्यादा ग़ौर-ओ-फ़िक्र करते हैं, जो इल्म-ए-क़लील (अल-इसरा, 17:85) की हद से बाहर हैं। ऐसे लोगों से मिलने-जुलने और बात करने में यह अंदेशा है कि आदमी ज़ेहनी इंतिशार (confusion) में मुब्तला हो जाए, इसलिए इससे मना फ़रमाया। ताहम जो लोग इल्मी सलाहियत रखते हों, वे इस्लाही मक़सद के तहत ऐसे लोगों से मिलें, तो इसमें कोई हर्ज नहीं।

आइशा रज़ियल्लाहु अन्हा कहती हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया—

"छह आदमी ऐसे हैं, जिन पर मैं लानत करता हूँ और अल्लाह ने भी उन पर लानत की हैऔर हर नबी की दुआ क़ुबूल होती है। अल्लाह की किताब में (अपनी तरफ़ से) इज़ाफ़ा करने वाला, अल्लाह की तक़दीर को झुठलाने वाला, ताक़त के ज़ोर पर ग़लबा हासिल करने वाला, ताकि वह उस शख़्स को इज़्ज़त दे,जिसे अल्लाह ने (उसकी सरकशी की वजह से) ज़लील किया है और वह उस शख़्स को ज़लील करे, जिसे अल्लाह ने इज़्ज़त दी है और अल्लाह के हराम को हलाल करने वालाऔर मेरी आल के मुताल्लिक़ वह बातें हलाल समझने वाला, जिन्हें अल्लाह ने हराम किया है और मेरी सुन्नत से मुँह मोड़ने वाला।"

(अल-मदख़िल इला इल्म अस-सुनन अल-बैहक़ी, हदीस नंबर 146; अस-सुन्नह लिब्न अबी आसिम, हदीस नंबर 337)

इस हदीस में जिन कामों का ज़िक्र है, वे सब सरकशी की नौइयत के जुर्म हैं और सरकशी बिला-शुबा ख़ुदा और रसूल के नज़दीक सबसे ज़्यादा संगीन जुर्म की हैसियत रखती है। आम क़िस्म का जुर्म किसी-न-किसी इंसानी कमज़ोरी के ज़ेर-ए-असर होता है, मगर सरकशी अना के जज़्बे के तहत किया जाने वाला एक फ़ेल है और अनानियत या तकब्बुर बिला-शुबा ख़ुदा की इस दुनिया में किसी इंसान का सबसे बड़ा जुर्म है।

असल यह है कि मौजूदा दुनिया को ख़ुदा ने टेस्ट (इम्तिहान) के लिए बनाया है। इसी टेस्ट की मस्लहत की बिना पर ख़ुदा ने इंसान को पूरी आज़ादी अता फ़रमाई है, क्योंकि आज़ादी के बिना टेस्ट मुमकिन नहीं। यह टेस्ट किस बात का है? यह टेस्ट इस बात का है कि इंसान हक़ीक़त-पसंदी का रवैया इख़्तियार करे। वह आज़ादी के बावजूद अपने आपको बे-आज़ाद कर ले। वह आज़ादी के बावजूद अपने आपको ख़ुदा के कंट्रोल में दे दे। वह इख़्तियार रखने के बावजूद अपने आपको बे-इख़्तियार कर ले यानी आज़ादी के बावजूद अपने इख़्तियार से ख़ुदा के आगे झुक जाना। ख़ुदा का असल मतलूब दीन यही आज़ादाना सरेंडर है। जो शख़्स इस तरह आज़ाद होते हुए ख़ुदा के आगे सरेंडर करे, वह मौत के बाद की अबदी ज़िंदगी में जन्नत का इनाम पाएगा और जो शख़्स ऐसा न करे, वह मौत के बाद की ज़िंदगी में जहन्नुम में दाखिल होगा।

इंतिहा-पसंदी

इंतिहा-पसंदी (extremism) एक फ़ितरी सिफ़त है। यह सिफ़त किसी शख़्स के अंदर कम होती है और किसी शख़्स के अंदर ज़्यादा। इस सिफ़त का तामीरी इस्तेमाल दुनिया में भलाई पैदा करता है। इसके

बरअक्स जब इस सिफ़त का ग़लत इस्तेमाल होने लगे, तो दुनिया बुराई से भर जाती है यानी इंतिहा-पसंदाना मिज़ाज का एक तामीरी पहलू है और दूसरा इसका तबाहकुन पहलू। इसका तामीरी पहलू यह है कि आदमी उसूल के मामले में सख़्त हस्सास हो, वह दूसरों के हुक़ूक़ के मामले में कमी को गवारा न करे। वह हक़ के रास्ते से भटकाव को देखे, तो तड़प उठे। वह अपनी ग़लती को शदीद तौर पर महसूस करता हो। वह अपनी कोताही के मामले में इससे ज़्यादा शदीद हो, जितना कोई शख़्स दूसरों की कोताही के मामले में शदीद होता है। यह इंतिहा-पसंदी सेहतमंद इंतिहा-पसंदी है। इस क़िस्म की इंतिहा-पसंदी का मुस्बत नाम हस्सासियत है।

इंतिहा-पसंदी का दूसरा पहलू यह है कि वह मनफ़ी रुख़ इख़्तियार करे। वह अपने इस जज़्बे की बिना पर दूसरों से नफ़रत करे। वह दूसरों से लड़ने के लिए तैयार हो जाए। वह इस्लाह के नाम पर जंग और क़त्ल शुरू कर दे। यह इंतिहा-पसंदी की क़ाबिल-ए-एतराज़ सूरत है। जब इंतिहा-पसंदी इसक़िस्म की मनफ़ी सूरत इख़्तियार कर ले, तो वह अमलन एक बुराई (evil) बन जाती है, न कि कोई ख़ैर (good)। इस क़िस्म की इंतिहा-पसंदी के लिए क़ुरआन और हदीस में 'ग़ुलू' (ghulu) का लफ़्ज़ इस्तेमाल किया गया है।

हस्सासियत (sensitivity) इंसान की एक ख़ास सिफ़त है। हस्सासियत ख़ुदा की एक अज़ीम नेमत है। अगर हस्सासियत न हो, तो आदमी हैवान के मानिंद हो जाएगा। बुराई को बुराई समझने का मिज़ाज उसके अंदर से ख़त्म हो जाएगा।

इंतिहा-पसंदी का मिज़ाज हमेशा मुहासबा (introspection)का मिज़ाज पैदा करता है, मगर यह मुहासबा अपने ख़िलाफ़ होना चाहिए। इसके बरअक्स अपनी कोताहियों से ग़ाफ़िल रहना और दूसरों की कोताही पर उनसे लड़ाई शुरू कर देना सख़्त गुनाह है। पहला रवैया

अगर सवाब का मुस्तहिक़ बनाता है, तो दूसरा किरदार आदमी को इस क़ाबिल बना देता है कि उसकी सख़्त पकड़ की जाए।

इज्तिहाद क्या है?

इज्तिहाद ज़िंदगी की एक ज़रूरत है। इसका दरवाज़ा कभी बंद नहीं होता, वह हमेशा खुला रहता है। हक़ीक़त यह है कि इज्तिहाद के लफ़्ज़ को शरई इज्तिहाद के मअने में लेना उसे महदूद बनाना है। इज्तिहाद अमली एतिबार से इससे ज़्यादा वसीअ मफ़हूम रखता है, जो फ़ुक़हा के यहाँ मुरव्वज (popular) है। इज्तिहाद इल्मी एतिबार से तख़्लीक़ी तर्ज़-ए-फ़िक्र (creative thinking) का दूसरा नाम है।

इज्तिहाद के लफ़्ज़ को महदूद शरई मअने में लेने का नतीजा यह हुआ कि इज्तिहाद एक मुक़द्दस चीज़ बन गया और लोगों के लिए जायज़ न रहा कि वे आज़ादाना तौर पर इज्तिहादी तर्ज़-ए-फ़िक्र को इख़्तियार करें। हालाँकि इल्मी एतिबार से यह दुरुस्त न था। इज्तिहाद की यह शर्त भी नहीं है कि किसी के पास इफ़्ता (फ़त्वा) की डिग्री मौजूद हो। चुनाँचे हदीस में आया है—

اسْتَفْتِ قَلْبَكَ، وَاسْتَفْتِ نَفْسَكَ.

"अपने दिल से फ़तवा पूछो, अपने ज़मीर से फ़तवा पूछो।"
(मुस्नद अहमद, हदीस नंबर 18006)

यहाँ दिल और ज़मीर कॉमनसेंस के मअने में हैं, किसी पुर-असरार मअने में नहीं। यह इज्तिहादी तर्ज़-ए-फ़िक्र की बात है।

हक़ीक़त यह है कि इज्तिहाद दरअसल ततबीक़-ए-नौ (reapplication) का नाम है। इज्तिहाद छोटे मामले में भी होता है

और बड़े मामले में भी। इज्तिहाद इन फ़िरादी मामले में भी होता है और क़ौमी मामले में भी। इज्तिहाद मज़हबी मामले में भी होता है और सेक्युलर मामले में भी। इज्तिहाद की शर्त सिर्फ़ एक है और वह यह कि आदमी की नीयत दुरुस्त होयानी वह दीन-ए-ख़ुदावंदी पर अमल करने का इरादा रखता हो।

इज्तिहाद के लफ़्ज़ी मअने हैं— बहुत ज़्यादा कोशिश करना। अमलन इसका मतलब यह है कि कोई शरई हुक्म, जो बज़ाहिर अपनी इब्तिदाई सूरत में क़ाबिल-ए-अमल न रहे, उसे दोबारा क़ाबिल-ए-अमल बनाने की कोशिश करना। चुनाँचे इज्तिहाद की एक तारीफ़ इन अलफ़ाज़ में की गई है—

بَذْلُ الْوُسْعِ لِنيلِ حُكْمٍ شَرْعِيٍّ بِطَرِيقِ الِاسْتِنْبَاطِ.

"किसी मसले के हल के लिए शरई हुक्म को ब-ज़रिया इस्तिंबात (inference) मालूम करने की इल्मी और फ़िक्री कोशिश करना।"

(अदबुल मुफ़्ती वल मस्तफ़्ती, इब्न असलाह, सफ़्हा 25)

दूसरे अलफ़ाज़ में इसका मतलब यह है कि बदले हुए हालात में शरई हुक्म की ततबीक़-ए-नौ (reapplication) तलाश करना।

मसलन मुसलमान मौजूदा ज़माने में ख़लीफ़ा या इस्लामी हुकूमत क़ायम करने की कोशिश कर रहे हैं, मगर उनका यह मक़सद क़ुर्बानियों के बावजूद पूरा न हो सका। अब इज्तिहाद यह है कि मुसलमान यह तलाश करें कि क़दीम तर्ज़ की ख़िलाफ़त का क़याम अब सिरे से मुमकिन ही नहीं रहा। अब वह ज़माना आ गया है कि ख़िलाफ़त के मॉडल को छोड़कर दूसरे क़ाबिल-ए-अमल मॉडल को दरयाफ़्त करना और इसके मुताबिक़ मिल्लत की इमारत तामीर करना।

इसी तरह क़ुरआन में एक तारीख़ी हक़ीक़त का बयान इन अलफ़ाज़ में आया है—

يَا قَوْمِ ادْخُلُوا الْأَرْضَ الْمُقَدَّسَةَ الَّتِي كَتَبَ اللَّهُ لَكُمْ وَلَا تَرْتَدُّوا عَلَى أَدْبَارِكُمْ فَتَنْقَلِبُوا خَاسِرِينَ.

"ऐ मेरी क़ौम! उस पाक ज़मीन में दाखिल हो जाओ, जो अल्लाह ने तुम्हारे लिए लिख दी है और अपनी पीठ की तरफ़ न लौटो, वरना नुक़सान में पड़ जाओगे।" (क़ुरआन, 5:21)

कुछ लोग इस आयत को हज़रत मूसा अलैहिस्सलाम के ज़माने के साथ ख़ास मानते हैं। यह बिला-शुब्हा एक जज़्बाती इज्तिहाद है, क्योंकि आयत के अलफ़ाज़ आम हैं, तो ख़ास करने की दलील इससे नहीं निकलती। क़ुरआन की इस आयत के बारे में मौजूदा दौर के उलमा सही इज्तिहादी स्पिरिट से तक़रीबन महरूम हो गए हैं। इनमें से कुछ उलमा इस हद तक गए हैं कि उन्होंने फ़िलिस्तीन के मामले में ख़ुदकुश हमलों को जायज़ क़रार दिया है। यह सिर्फ़ इंतिहा-पसंदी नहीं है, बल्कि वह हराम को हलाल क़रार देने के हम-मअनी है और यह ग़लती इसलिए हुई कि उलमा ने इसराईल के मसले को एक अलग मसला क़रार दे दिया। असल यह है कि मौजूदा दौर के उलमा सही इज्तिहादी स्पिरिट से तक़रीबन महरूम हो गए हैं। वे इज्तिहाद को एक क़िस्म की फ़िक्री गुमराही समझते हैं। हालाँकि हदीस में इज्तिहाद की इस क़द्र हौसला-अफ़ज़ाई की गई है कि अगर आदमी से इज्तिहाद करने में ग़लती हो जाए, तो उस पर भी सवाब की खुशख़बरी दी गई है (मुस्नद अहमद, हदीस नंबर 17774; सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 7352)। चुनाँचे इस डर से इज्तिहाद न करना कि कहीं मुझसे ग़लती न हो जाए, यह एक बे-बुनियाद वसवसा है, न कि सही इस्लामी स्पिरिट। हक़ीक़त यह है कि मिल्लत

के मुस्तक़बिल की तामीर मुमकिन की बुनियाद पर हो सकती है, नामुमकिन की बुनियाद पर नहीं और ज़मानी एतिबार से नामुमकिन और मुमकिन के दरमियान का फ़र्क़ सिर्फ़ इज्तिहाद के ज़रिए मालूम हो सकता है, किसी डिक्शनरी को कंसल्ट करने से इसका जवाब मिलने वाला नहीं।

सफ़र का रुख़

एक अरबी मैगज़ीन में एक मज़मून पढ़ा। उसका उनवान यह था—

إستيقظوا من النوم أيّها المسلمون.

ऐ मुसलमानो, नींद से जागो।

उसे पढ़कर मुझे अरबी शायर मआरूफ़ अल-रसाफ़ी (वफ़ात : 1945) की नज़्म याद आ गई। उसने तंज़िया (sarcastic) अंदाज़ में अरबों को झकझोरने की कोशिश की थी। उस नज़्म का एक शेर यह था—

तुम सो जाओ और बेदार न हों,
क्योंकि सोने वाले लोग ही कामयाब होते हैं।

نا مُوا وَلَا تَسْتَيقِظوا, لَا فَازَ اِلّا النُّوَّمُ

अरबों से या मुसलमानों से यह शिकायत मेरे नज़दीक ख़िलाफ़-ए-वाक़या है। असल यह है कि मौजूदा ज़माने में अरब और दूसरे मुसलमान ख़ूब जागे। उन्होंने बड़ी-बड़ी सरगर्मियाँ दिखाईं, अलबत्ता उन सरगर्मियों का कोई मुस्बत नतीजा नहीं निकला। नतीजे की कमी को अमल की कमी समझकर लोग उनसे शिकायत कर रहे हैं।

मिसाल के तौर पर फ़िलिस्तीन के मसले को लीजिए। शेख़ हसन अल-बन्ना ने 1948 में इसके लिए बड़े पैमाने पर जिहाद किया। अल-इख़्वानुल मुस्लिमून अपनी तासीस (laying foundation) के वक़्त से लेकर अब तक निहायत बुलंद बाँग के तौर पर फ़िलिस्तीन के मसले पर सरगर्म रहे हैं। ख़ुद फ़िलिस्तीनी लोग फ़िलिस्तीन के अंदर और उसके बाहर पुर-शोर तौर पर जागे हुए हैं और इसी तरह सारी दुनिया के मुसलमान भी। जमाल अब्दुल नासिर ने इसी सवाल पर 1967 में इज़राइल, फ्रांस और ब्रिटेन से जंग की। 1991 की ख़लीज की जंग की एक वजह फ़िलिस्तीन का मसला है, हत्ता कि बहुत-से मुसलमानों ने सद्दाम हुसैन के रूप में सलाहुद्दीन अय्यूबी को दोबारा पैदा कर लिया, मगर सारी कोशिशों के बावजूद नतीजा बिलकुल उल्टा निकल रहा है। इस मुद्दत में इज़राइल का रक़बा कई गुना बढ़ गया और उसकी ताक़त में बहुत ज़्यादा इज़ाफ़ा हो गया और फ़िलिस्तीनियों का मुस्तक़बिल तारीक से तारीक-तर होता जा रहा है।

ऐसी हालत में असल मसला यह नहीं है कि लोग सो रहे हैं, उन्हें जगाया जाए। असली मसला यह है कि लोग बे-फ़ायदा सिम्तों में दौड़ रहे हैं और ज़रूरत है कि उन्हें ग़लत सिम्त से मोड़कर सही सिम्त में सरगर्म-ए-सफ़र किया जाए। मसला ग़लत रुख़ पर अमल करने का है, न कि सिरे से अमल नकरने का। अमलकी सही सिम्त वह है, जो नतीजाख़ेज़ हो। जो अमल नतीजाख़ेज़ न हो, वह सही अमल कभी नहीं हो सकता। इस दुनिया में नतीजा सही सिम्त में अमल करने से मिलता है, न कि मुजर्रद (only) अमल करने से।

असल मसला

फ़िलिस्तीनी तहरीक 'इंतिफ़ाज़ा'(uprising) के बारे में बहुत-सी किताबें छपी हैं। इनमें से एक 125 सफ़्हा की वह अरबी किताब है, जो

इस वक़्त हमारे पेश-ए-नज़र है। इस किताब के एक बाब में कहा गया है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के ज़माने में एक मुस्लिम औरत मदीना के एक यहूदी बाज़ार में थी। एक यहूदी ने उसकी इज़्ज़त पर हमला करने की कोशिश की। औरत ने फ़रियाद की। क़रीब में मौजूद एक मुसलमान ने उसे सुना और फ़ौरन ही तलवार लेकर यहूदी की गर्दन मार दी (सीरत इब्न हिशाम, जिल्द 2, सफ़्हा 48)।

इसी तरह अमूरिया में एक मुस्लिम औरत को रोमियों ने गिरफ़्तार कर लिया। उसने फ़रियाद करते हुए कहा—وَا مُعْتَصِمَاه (हाय मोतसिम)। एक मुसलमान ने इस पुकार को सुना और उसे बग़दाद के ख़लीफ़ा मोतसिम तक पहुँचाया। ख़लीफ़ा मोतसिम फ़ौरन फ़ौज लेकर रवाना हुआ और अमूरिया पहुँचकर मुस्लिम ख़ातून को रिहाई दिलाई (अल-मुंज़म फ़ी तारीख़ अल-मुलूक वल-उम्मम लि इब्न अल-जौज़ी, जिल्द 11, सफ़्हा 29)।

तारीख़-ए-इस्लामी के इन दो वाक़यात को नक़ल करने के बाद साहिब-ए-किताब लिखते हैं—

कितनी ही बार फ़िलिस्तीन में और लेबनान के ख़ेमा-गाहों में और मुख़्तलिफ़ मुल्कों में बेवाओं और यतीमों और बूढ़ों और बच्चों के मुँह से फ़रियाद और इआनत-तल्बी की पुकार बुलंद हुई, मगर मुसलमानों की तरफ़ से उन्हें कोई जवाब नहीं मिला। उम्मत में कोई रहनुमा और कोई लीडर और कोई जमात और कोई हाकिम उनकी मदद के लिए हरकत में नहीं आया गोया कि रू-ए-ज़मीन के मुसलमानों के लिए उनके भाइयों का मामला कोई अहमियत नहीं रखता।

साहिब-ए-किताब के ये आख़िरी अलफ़ाज़ बिलकुल ख़िलाफ़-ए-वाक़या हैं। हक़ीक़त ऐन इसके बरअक्स है। असली वाक़या यह है कि फ़िलिस्तीन में और दूसरे मुल्कों में मज़लूम मुसलमानों (औरतों

और मर्दों) की पुकार पर बेशुमार लोग उठे। 1948 में हसन अल-बन्ना (वफ़ात : 1949) मुसलमानों की बहुत बड़ी जमीयत के साथ उठे और 'लब्बैक या फ़िलिस्तीन' का नारा लगाते हुए यहूदियों के ख़िलाफ़ जिहाद किया। 1965 में जामाल अब्दुल नासिर ने हुकूमत की पूरी ताक़त के साथ उनका मुक़ाबला किया, मगर ये सारी कोशिशें ग़ैर-मुअस्सिर साबित हुईं। इसी तरह सारी दुनिया में लाखों मुसलमानों ने अपने मज़लूम भाइयों की हिमायत में जिहाद किया और इसी राह में अपनी जानें दे दीं।

मदीना में या अमूरिया में मज़लूम ख़वातीन की मदद के लिए जो क़ुरबानी दी गई, वह मिक़दार के एतिबार से उससे बहुत कम है, जो मौजूदा ज़माने में इस क़िस्म की मज़लूम औरतों और मर्दों के लिए दी गई है, मगर नतीजा बिलकुल मुख़्तलिफ़ है। मदीना और अमूरिया में निस्बतन कम क़ुरबानियों से जो मक़सद हासिल कर लिया गया था, वह मौजूदा ज़माने में ज़्यादा क़ुरबानी के बावजूद हासिल नहीं किया जा सका।

साहिब-ए-किताब और इस क़िस्म के दूसरे मुसलमानों की ग़लती यह है कि वे अपनी सोच का आग़ाज़ मदीना और अमूरिया से कर रहे हैं। हालाँकि यह सही नहीं। उन्हें अपनी सोच का आग़ाज़ मक्का से करना चाहिए। मदीना और अमूरिया तो इस्लामी तारीख़ में मरहला-ए-तैयारी (formative period) की इंतिहा थे, वह उसका आग़ाज़ न था। मरहला-ए-तैयारी का आग़ाज़ तो मक्का से हुआ। मौजूदा ज़माने में मुसलमानों के ज़वाल की बिना पर उनकी तैयारी का मामला दोबारा पीछे की तरफ़ लौट गया है। उनके अंदर इस क़िस्म के ज़िंदा अफ़राद मौजूद नहीं हैं, जिस क़िस्म के ज़िंदा अफ़राद रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने तैयार किए थे। फ़र्द की तैयारी के एतिबार से आज हम अपनी तारीख़ के आग़ाज़ में हैं, हम अपनी तारीख़ के इख़्तिताम

(end) में नहीं हैं। मौजूदा मुस्लिम रहनुमा इस राज़ को समझ न सके, इसीलिए वे ऐसे इक़दामात करते रहे, जिसका नतीजा नाकामी के सिवा किसी और सूरत में निकलने वाला न था।

इस मामले को समझने के लिए हमें पीछे लौटकर मक्का के इब्तिदाई दौर में जाना होगा। इस एतिबार से जब हम मक्का के हालात का मुताला करते हैं, तो वहाँ हमें मदीना और अमूरिया से बिलकुल मुख़्तलिफ़ तस्वीर नज़र आती है, मसलन— इब्न इस्हाक़ कहते हैं कि अम्मार बिन यासिर, उनके बाप और माँ सुमय्या बनू मख़्ज़ूम के हलीफ़ (ally) और मूली थे और इस्लाम क़ुबूल कर चुके थे। चुनाँचे बनू मख़्ज़ूम के क़बीले के लोग दोपहर के वक़्त जब गर्मी ख़ूब तेज़ हो जाती, तो उन सबको लेकर मक्का के बाहर निकलते और सहरा की गर्म रेत पर लिटाकर तकलीफ़ देते। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम उनके पास से गुज़रते और वे लोग रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से फ़रियाद करते, तो रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम उनसे कहते—

صَبْرًا يَا آلَ يَاسِرٍ،فَإِنَّ مَوْعِدَكُمُ الْجَنَّةُ.

"यासिर के घरवालो! सब्र करो, तुम्हारे लिए जन्नत का वादा है।" (मुस्तदरक अल-हाकिम, हदीस नंबर 5646)

अम्मार बिन यासिर की माँ सुमय्या को ख़ुद इसी तरह अज़ाब देकर उन्होंने मार डाला, मगर वे किसी हाल में इस्लाम को छोड़ने पर राज़ी न हुईं (فَأَمَّا أُمُّهُ فَقَتَلُوهَا، وَهِيَ تَأْبَى إِلَّا الْإِسْلَامَ) (सीरत इब्न हिशाम, जिल्द 1, सफ़्हा 279)।

हक़ीक़त यह है कि मदीना और अमूरिया के वाक़ये को उस वक़्त तक समझा नहीं जा सकता, जब तक मक्का के मज़कूरा वाक़ये को इससे मिलाकर न देखा जाए। क्या वजह है कि मदीना में जिस

क़िस्म के वाक़ये पर इक़दाम (क़दम उठाना) किया गया, मक्का में उसी क़िस्म के शदीद तर वाक़ये पर कोई इक़दाम नहीं किया गया। उसका सबब यह था कि मक्का का ज़माना-ए-तैयारी और इस्तेहकाम (पैर जमाने) का ज़माना था। तैयारी और इस्तेहकाम के ज़माने में इक़दाम ग़ैर-मुअस्सिर होता, इसीलिए मक्का में सब्र किया गया। सब्र दरअसल तैयारी और इस्तेहकाम की क़ीमत है। जो लोग इब्तिदाई मरहले में सब्र न करें, वे बाद के मरहले में तैयारी और इस्तेहकाम के दर्जे को भी नहीं पहुँच सकते।

मक्का में नाक़ाबिल-ए-बरदाश्त सब्र किया जाता है, उसी वक़्त यह मुमकिन होता है कि मदीने में नाक़ाबिल-ए-बरदाश्त को बरदाश्त करने की हाजत न रहे। जो लोग मरहला-ए-तैयारी में सब्र और क़ुरबानी का सबूत न दे सकें, वे मरहला-ए-इस्तेहकाम की मंज़िल को भी नहीं पहुँच सकते।

यही मौजूदा ज़माने के मुसलमानों का असल मसला है। सदियों के अमल के नतीजे में मुसलमान दोबारा अपनी तारीख़ के आग़ाज़ में पहुँच गए थे। अब ज़रूरत थी कि दोबारा उनके दरमियान तैयारी का वही अमल जारी किया जाए, जो मक्का में जारी किया गया था, मगर मौजूदा ज़माने के मुस्लिम रहनुमा इस राज़ को समझ न सके। उन्होंने अपने आपको तारीख़ के इख़्तिताम वाले मरहले में फ़र्ज़ करके अमली इक़दामात शुरू कर दिए। क़ुरआन से मालूम होता है कि ज़रूरी तैयारी के बग़ैर इक़दाम पैग़ंबर और अस्हाब-ए-पैग़ंबर के लिए भी मुफ़ीद न हो सकता था (3:152), फिर वे मौजूदा मुसलमानों के लिए क्यूँकर मुफ़ीद हो जाते। यही वजह है, जिसने उनके अमली इक़दामात को बे-फ़ायदा और बे-असर बना दिया।

एक सवाल

ईद-उल-फ़ित्र (2019) की मुनासबत से ख़ुत्बा सुनने का मौक़ा मिला। ख़ुत्बे में मुसलमानों के बारे में यह कहा गया कि उनके ख़िलाफ़ हिंदुस्तान में यह नारे लगाए जा रहे हैं—

لَنُخْرِجَنَّكُمْ مِنْ أَرْضِنَا أَوْ لَتَعُودُنَّ فِي مِلَّتِنَا. (14:13)

फिर यही ख़तीब साहब दावत की बात भी कर रहे थे, दूसरे मुक़ामात से भी फ़ोन आया था कि वहाँ के ख़तीब हज़रात भी यही बात इसी आयत से निकालकर रहे थे। यहाँ मेरा सवाल यह है कि दौर-ए-ताज़ीब (religious persecution) की आयतों को इस तरह दौर-ए-जदीद पर मुंतबिक़ (apply) करना कहाँ तक दुरुस्त है, वज़ाहत फरमाएँ।

(हाफिज़ सैयद इक़बाल अहमद उमरी, उमराबाद, तमिलनाडु)

यह क़ुरआन के नाम पर मुग़ालता (fallacy) फैलाना है, क्योंकि इन लोगों के पास ऐसा रेफरेंस नहीं है, जो साबित-शुदा तौर पर इस बात की ताईद करता हो। इस तरह के मामले में बरअक्स तौर पर क़ुरआन यह पुर उम्मीद रहनुमाई देता है—

> "कितनी ही छोटी जमातें अल्लाह के हुक्म से बड़ी जमातों पर ग़ालिब आई हैं और अल्लाह सब्र करने वालों के साथ है।"
>
> (क़ुरआन, 2:249)

इस आयत का मतलब यह है कि अल्लाह रब्बुल आलमीन के बताए हुए उसूल की बुनियाद पर अपने अमल की मंसूबा-बंदी करने वाली जमात ज़रूर ग़ालिब आती है, ख़्वाह वह कितनी ही कमज़ोर जमात हो और इस मंसूबा-बंदी की बुनियादी शर्त सब्र है।

जो लोग हालात-ए-हाज़िरा पर क़ुरआन की मज़कूरा आयत को चस्पाँ करते हैं, उनके बारे में यह कहना सही होगा कि हज़रत आयशा का क़ौल उनपर चस्पाँ होता है—

أُولَئِكَ قَرَءُوا، وَلَمْ يَقْرَءُوا.

"उन्होंने क़ुरआन की आयत को पढ़ा, लेकिन उन्होंने क़ुरआन के मिस्दाक़ को नहीं समझा।"

(मुसनद अहमद, हदीस नंबर 24609)

ऐसे लोगों को चाहिए कि वे क़ुरआन का नए सिरे से मुताला करें। उन्हें चाहिए कि वे दूसरों को बुरा बताने के बजाय ख़ुद अपनी ग़लती का ऐलान करें। इस मामले में असल बात जो जानने की है, वह यह है कि मुसलमानों ने बर-ए-सग़ीर हिंद (Indian subcontinent) में यह ग़लती की कि अपने मदऊ को अपना दुश्मन बना लिया। यह बिला-शुब्हा मुसलमानों की ग़लती थी। अब मुसलमानों को चाहिए कि वे इस मामले में यू टर्न लें और जिन लोगों को अपना हरीफ़ बना रखा था, उन्हें अपना मदऊ समझकर मुस्बत ज़हन के साथ अपने अमल की मंसूबा बंदी करें। इसके बाद वे अल्लाह की मदद से बिला-शुब्हा कामयाबी हासिल करेंगे।

सुप्रीम चीज़

ज़िंदगी में सबसे पहला सवाल यह है कि इंसान के लिए सुप्रीम चीज़ क्या है? मैं अपने तजुर्बे के मुताबिक़ कह सकता हूँ कि किसी इंसान के लिए सुप्रीम चीज़ ज़हनी इत्मीनान (peace of mind) है। किसी इंसान के लिए सुप्रीम चीज़ न तो माल-ओ-दौलत है, न शौहरत (fame) है और न ताक़त है और न अवामी मक़बूलियत (popularity) है। किसी

इंसान के लिए सुप्रीम चीज़ वही हो सकती है, जो उसे फ़ुलफ़िलमेंट (fulfillment) दे और तजुर्बा यह साबित करता है कि पीस ऑफ़ माइंड के सिवा कोई और चीज़ इंसान को फ़ुलफ़िलमेंट नहीं देती।

पीस ऑफ़ माइंड की यह अहमियत क्यों है? इसका सबब यह है कि पीस ऑफ़ माइंड इंसान की नेचर के मुताबिक़ है। इंसान अपनी नेचर के मुताबिक़ यह चाहता है कि वह आख़िरी हद तक अपने आपको मुतमइन बना सके, मगर किसी इंसान को इत्मीनान सिर्फ़ दाख़िली कामयाबी (Internal achievement) पर हो सकता है, ख़ारिजी कामयाबी (external achievement) पर नहीं। इसी दाख़िली कामयाबी का दूसरा नाम इंटेलेक्चुअल डेवलपमेंट (intellectual development) या स्पिरिचुअल डेवलपमेंट (spiritual development) है।

अमेरिकी दौलतमंद बिल गेट्स (Bill Gates) ने डॉलर के बारे में अपने तजुर्बे को इन अलफ़ाज़ में बयान किया—

> ‘‘Once you get beyond million dollars, it is the same hamburger.’’

बिल गेट्स ने जो बात डॉलर के बारे में कही है, वही बात हर ख़ारिजी कामयाबी के लिए दुरुस्त है। यह ख़ारिजी कामयाबी ख़्वाह दौलत हो या बिज़नेस हो या शौहरत होया सोशल मीडिया पर फॉलोवर्स की कसरत होया पॉलिटिकल पावर होया और कोई माद्दी चीज़ हो। इस क़िस्म की कोई भी चीज़ इंसान को हक़ीक़ी मअने में ज़हनी इत्मीनान अता नहीं करती। माद्दी तौर पर कामयाबी हासिल करने के बावजूद भी इंसान ख़ुद को ज़हनी तौर पर बे-सुकूनी की हालत में पाता है, मसलन—अमेरिका के बिल गेट्स (Bill Gates) के लिए उसकी दौलत तस्कीन का ज़रिया नहीं बनी, तो उसने अपनी दौलत का बड़ा हिस्सा चैरिटी में दे दिया। अमेरिका के साबिक़ सदर डोनाल्ड ट्रंप (Donald Trump)

को व्हाइट हाउस में पहुँचकर शांति नहीं मिली। चुनाँचे उसने व्हाइट हाउस को 'कोकून' (cocoon) बताया वग़ैरह।

असल यह है कि इंसान अपनी फ़ितरत के एतिबार से मेयार-पसंद (perfectionist) है, जबकि मौजूदा दुनिया हर एतिबार से ग़ैर-मेयारी (imperfect) है। इस सूरत-ए-हाल ने इंसान और मौजूदा दुनिया के दरमियान एक टकराव पैदा कर दिया है। इसी तज़ाद का यह नतीजा है कि कोई इंसान हर क़िस्म के दुनियावी सामान को हासिल करने के बावजूद मुतमइन नहीं होता। दुनिया की हर चीज़ उसे अपने ज़हनी मेयार से कमतर मालूम होती है। इसलिए वह उन्हें पाकर भी मुतमइन नहीं होता। बज़ाहिर राहत के सामान के दरमियान भी वह हमेशा एक क़िस्म की ग़ैर-शऊरी बेचैनी में मुब्तला रहता है।

फ़ितरत का यह क़ानून साबित करता है कि दुनियावी राहत के सामान में ज़हनी सुकून तलाश करना एक ऐसा बेसूद अमल है, जो कभी कार-आमद बनने वाला ही नहीं। इस मसले का वाहिद मुमकिन हल वही है, जिसे दीन में क़नाअत (contentment) कहा गया है। हदीस में मोमिन की मिसाल मुसाफ़िर से दी गई है (सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 6416)। मुसाफ़िर का मामला क्या है? वह अपने आपको सफ़र की हालत में समझता है, इसलिए वह तंगी और परेशानी के बावजूद सफ़र के वक़्तया सवारी में बैठकर इत्मीनान के साथ अपना सफ़र तय करता है। इसी हक़ीक़त-पसंदाना सोच का नाम क़नाअत (contentment) है यानी आदमी सूरत-ए-मौजूदा पर दिल से राज़ी हो जाए।

दुनिया में जब भी कोई शख़्स सही उसूल के मुताबिक़ कमाने की कोशिश करे तो वह ज़रूर इतनी मआश (livelihood) हासिल कर लेता है, जो उसकी ज़रूरतों के लिए काफ़ी हो। अगर वह इस मिले हुए पर राज़ी हो जाए, तो इसका फ़ायदा उसे ज़हनी सुकून की सूरत में

मिलेगा, लेकिन सुकून हमेशा क़नाअत से मिलता है और क़नाअत का मतलब है— मिले हुए पर राज़ी हो जाना।

सहाबी-ए-रसूल साद बिन अबी वक़ास ने अपने बेटे को नसीहत करते हुए कहा—

"ऐ मेरे बेटे! जब तुम माल तलब करो तो उसे क़नाअत के साथ तलब करो, क्योंकि जिसके अंदर क़नाअत न हो, माल उसके लिए काफ़ी नहीं हो सकता।"

يَا بُنَيَّ! إِذَا طَلَبْتَ الْغِنَى؛ فَاطْلُبْهُ بِالْقَنَاعَةِ؛ فَإِنَّهُ مَنْ لَمْ يَكُنْ لَهُ قَنَاعَةٌ لَمْ يُغْنِهِ مَالٌ.

(तारीख़-ए-दमिश्क लिब्न असाकिर, जिल्द 20, सफ़्हा 363)

अबू हुरैरा रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया—

كُنْ قَنِعًا، تَكُنْ أَشْكَرَ النَّاسِ.

"क़नाअत करने वाले बनो, तुम सबसे ज़्यादा शुक्र करने वाले बन जाओगे।" (सुनन इब्न माजा, हदीस नंबर 4217)

शुक्रगुज़ारी का जज़्बा इंसान के अंदर पीस ऑफ़ माइंड पैदा करता है।

डायरी : 1986

16 अप्रैल, 1986

आज अबूबकर नज्जार (दक्षिण अफ़्रीक़ा) मिलने के लिए आए। उनका पूरा पता यह है—

Shaikh Aboubaker Najaar
President, Islamic Council of South Africa,
12, Elwyn Road, Crawford, Cape,
P.O. Box 200, Athlone 7760, SA

जनाब अबूबकर नज्जार साहब ने बताया कि दक्षिण अफ़्रीक़ा की कुल आबादी 30 मिलियन है। इसमें आधे मिलियन मुसलमान हैं। मुसलमानों ने वहाँ के क़ादियानी फ़िरक़े के ख़िलाफ़ मुक़ामी अदालत में मुक़दमा किया, ताकि क़ादियानियों को अपनी मस्जिदों और दीनी मुक़ामात में आने से रोक दें, मगर अदालत ने ख़िलाफ़ फ़ैसला दिया और अब क़ादियानी पहले के मुक़ाबले में ज़्यादा दिलेरी से मुसलमानों के मज़हबी मुक़ामात में आने लगे हैं। इस तरह मुसलमानों का मसला और ज़्यादा बढ़ गया है। मैंने पूछा कि क्या वहाँ की अदालत में तअस्सुब है? उन्होंने कहा कि बिलकुल नहीं। इसकी वजह सिर्फ़ यह थी कि मुसलमान अपने केस की मज़बूत वकालत न कर सके। चुनाँचे अब वहाँ के मुसलमान यह चाहते हैं कि वे मुस्लिम मुल्कों से चंदा वसूल करके दोबारा सुप्रीम कोर्ट में इस अदालती फ़ैसले को चैलेंज करें।

गुफ़्तगू के दौरान मैंने अबूबकर नज्जार साहब से पूछा कि क्या साउथ अफ़्रीक़ा में ग़ैर-मुसलमानों के दरमियान कुछ तब्लीग़ी काम हो रहा है? उन्होंने कहा कि नहीं।

> "Tabligh work among non-Muslims is virtually non-existent."

मजीद सवालात के दौरान उन्होंने बताया कि ग़ैर-मुसलमानों में तब्लीग़ी काम न होने के बावजूद लोग इस्लाम क़ुबूल कर रहे हैं। ख़ास तौर पर ब्लैक कम्युनिटी में इस्लाम क़ुबूल करने वालों की तादाद काफ़ी है।

यही सूरत-ए-हाल तक़रीबन सारी दुनिया में है। ख़ालिस कम्युनिस्ट मुल्कों को छोड़कर हर जगह यह सूरत-ए-हाल है कि मुसलमान तब्लीग़ी काम तो बिलकुल नहीं करते, मगर इसके बावजूद हर मुल्क में रोज़ाना लोग कसरत से इस्लाम क़ुबूल कर रहे हैं।

एक तरफ़ मुसलमानों की वे सरगर्मियाँ हैं, जिनका मुतलक़ कोई नतीजा नहीं निकल रहा है। दूसरी तरफ़ दावत के मैदान में इस्लाम हररोज़ अपनी क़ुव्वत का मुज़ाहरा कर रहा है, मगर मुसलमानों के लिए इसमें कोई सबक़ नहीं है।

17 अप्रैल, 1986

ईस्ट बर्लिन (जर्मनी) के एक क्लब में धमाका हुआ, जिसमें कुछ अमरीकी बाशिंदे हलाक हो गए। सदर-ए-अमेरिका मिस्टर रीगन ने ऐलान किया है कि यह लीबिया के सदर मुअम्मर क़ज़ाफ़ी की दहशत-पसंदाना स्कीम के तहत हुआ है। चुनाँचे उन्होंने इंतिक़ामी कार्रवाई के लिए अपनी फ़ौजों को हुक्म दे दिया। अप्रैल, 1986 में अमेरिकी जहाज़ लीबिया की फ़िज़ा में पहुँचें और ताराबुलस (बाब अल-अज़ीज़िया) पर बमबारी की। यह वही मुक़ाम है,जहाँ मुअम्मर क़ज़ाफ़ी का हेडक्वार्टर है। इस वाक़ये पर सारी दुनिया में शदीद रद्द-ए-अमल हुआ। नई दिल्ली के अख़बार इंडियन एक्सप्रेस (17 अप्रैल, 1986) के इदारिया का उनवान यह था—

Shameful Aggression यानी शर्मनाक जारिहिय्यत।

इस इदारिया का आग़ाज़ इन अलफ़ाज़ में किया गया था—

“Shock, anger, disgust and alarm. These words sum up the reaction of much of the world to the naked and unprovoked attack, the United States launched on Libya.”

हज़ार साल पहले इस क़िस्म का वाक़या सियासी दुनिया में मामूल का एक वाक़या था। उस वक़्त इस क़िस्म के वाक़ये पर न कोई रद्द-ए-अमल ज़ाहिर किया जाता था और न आजकल की तरह प्रेस के ज़राए थे कि मिनटों में इसकी ख़बर पूरी दुनिया में फैल जाए और लोगों के बयानात छपकर हर जगह पहुँच जाएँ।

यह ज़माने का फ़र्क़ है। इस फ़र्क़ ने मौजूदा ज़माने में इस्लाम की दावत के लिए ऐसा नया इमकान खोल दिया है, जो इससे पहले कभी दुनिया में मौजूद नहीं था। मुसलमान अगर इश्तिआल-अंगेज़ी (provocation) से बचें, तो वे जारिहिय्यत के अंदेशे के बग़ैर सारी दुनिया में इस्लाम की दावत फैला सकते हैं। (2004 में रोनाल्ड रीगन का और 2011 में कर्नल मुअम्मर क़ज़ाफ़ी का इंतिक़ाल हो चुका है।)

18 अप्रैल, 1986

लीबिया पर अमेरिका का हमला आजकल अख़बारों के सफ़हा-ए-अव्वल की ख़बर बना हुआ है। नई दिल्ली के अंग्रेज़ी अख़बार टाइम्स ऑफ इंडिया (18 अप्रैल, 1986) के सफ़हा-ए-अव्वल की पहली ख़बर की सुर्ख़ी यह थी—

Soviet warship takes up position in the Gulf of Sidra.

सोवियत रूस के समुंद्री जंगी जहाज़ों ने ख़लीज-ए-सिदरा में पोज़ीशन ले ली।

यह ख़बर बताती है कि मौजूदा ज़माने में मुस्लिम मुमालिक किसी की हिमायत के बल पर ज़िंदा हैं। आज उनकी अपनी ज़ाती कोई क़ुव्वत नहीं।वे सिर्फ़ इसलिए ज़िंदा हैं कि मग़रिब की बड़ी ताक़तें अपनी क़ुव्वत के ज़रिए उनकी सरपरस्ती करती हैं। लीबिया का सरपरस्त रूस है, सऊदी अरब का सरपरस्त अमेरिका है और इसी तरह दूसरे मुस्लिम ममालिक।

क़ुरआन मजीद में यहूदियों के बारे में कहा गया है कि उन्हें कभी मुस्तक़िल क़ुव्वत हासिल न होगी। वे या तो अल्लाह की रस्सी के साथ रहेंगे या लोगों की रस्सी के साथ (क़ुरआन, 3:112)।

'अल्लाह की रस्सी' से मुराद यहाँ इस्लामी हुकूमत है और 'लोगों की रस्सी' से मुराद ग़ैर-मुस्लिम अक़्वाम की हुकूमत।

यहूदियों के बारे में यह क़ुरआनी पेशीनगोई मुसलसल सही साबित हो रही है। मौजूदा ज़माने में उनकी हुकूमत (इज़राइल) अमेरिका की सरपरस्ती के बल पर ज़िंदा है, मगर मुसलमानों का हाल भी मौजूदा ज़माने में इससे मुख़्तलिफ़ नहीं। मौजूदा ज़माने के मुस्लिम मुमालिक अपनी कोई ज़ाती क़ुव्वत नहीं रखते। वे सब किसी-न-किसी ग़ैर-मुस्लिम बड़ी ताक़त की हिमायत के तहत ज़िंदा हैं। कोई मुल्क रूस की हिमायत के तहत ज़िंदा है और कोई अमेरिका की हिमायत के तहत।

19 अप्रैल, 1986

एक साहब जो जमात-ए-इस्लामी के पुराने रुक्न हैं,वे जमात की मजलिस-ए-नुमाइंदगान के मेंबर हैं वग़ैरह। वे मजलिस-ए-नुमाइंदगान के इज्तिमे के तहत दिल्ली आए थे। उस दरमियान वे मुझसे भी मिलने के लिए आए। उनसे गुफ़्तगू के दौरान हिंदुस्तान के एक मारूफ़ आलिम-ए-दीन का ज़िक्र आया। मैंने मज़कूरा आलिम-ए-दीन की बाज़ बातों की तारीफ़ की। उन्होंने अपना तब्सिरा करते हुए कहा कि उनके अंदर क़ियादत की मुतलक़ सलाहियत नहीं। वे ज़माने को नहीं पहचानते और जिस आदमी के अंदर ज़माने की पहचान न हो, तो वह कभी लीडर नहीं बन सकता।

मैंने पूछा कि ज़माने की पहचान से आपकी क्या मुराद है? उन्होंने कहा कि आजकल यूपी में और दूसरे मुक़ामात पर बाबरी मस्जिद (अयोध्या) का मसला छिड़ा हुआ है। तमाम मुसलमान इस मसले पर सख़्त नाराज़ हैं, मगर मज़कूरा आलिम-ए-दीन का हाल यह है कि

वे इस मामले में कुछ बोलते नहीं। कई इज्तिमाआत में उनसे बाबरी मस्जिद के बारे में सवाल किया गया, मगर वे ख़ामोश रहे। उन्होंने कहा कि इस वक़्त जो शख़्स बाबरी मस्जिद का मसला लेकर उठेगा, वह मुसलमानों का क़ाइद बन जाएगा।

मैंने सोचा कि ज़माने की पहचान के बारे में लोगों का नज़रिया कितना नाक़िस (incomplete) है। यह बात बजा-ए-ख़ुद सही है कि क़ाइद को ज़माने की पहचान होनी चाहिए, मगर इसका मतलब यह नहीं कि वह बाबरी मस्जिद जैसे मसाइल को लेकर धुआँ-दार तक़रीरें करने लगे।

ज़माने को पहचानने से मुराद यह है कि उ नक़ुव्वतों को पहचाना जाए, जिन्होंने ज़माने में फ़ैसलाकुन हैसियत हासिल की है। जज़्बाती उबाल और चीज़ है और ज़मानी हक़ीक़तें बिलकुल दूसरी चीज़। क़ाइद के लिए बिला-शुब्हा ज़रूरी है कि वह ज़मानी हक़ीक़तों को जाने, उसके बग़ैर वह अपनी क़ौम की सही रहनुमाई नहीं कर सकता।

20 अप्रैल, 1986

हिंदुस्तान के मौजूदा हुक्मरान निहायत पुरजोश तौर पर हिंदुस्तान को कंप्यूटर एज में दाख़िल कर रहे हैं। शायद उनका ख़्याल है कि सिर्फ़ इस काम से उनका मुल्क कंप्यूटर एज में दाख़िल हो जाएगा कि मग़रिबी मुल्कों से कंप्यूटर मँगाए जाएँ और उनको मुल्क के हर बड़े दफ़्तर में नस्ब कर दिया जाए। हालाँकि यह मुग़ालते के सिवा कुछ नहीं है। टाइम्स ऑफ इंडिया (19 अप्रैल, 1986) में मिस्टर एस.एस. गुल ने इस ज़हनियत पर तब्सिरा करते हुए निहायत सही तौर पर लिखा है—

> “Modern management techniques and computerized office equipments are only aids to efficient management. They are no substitutes for systems or structures.”

जदीद इंतिज़ामी तरीक़े और दफ़्तरी कंप्यूटर सिर्फ़ चौकस इंतिज़ामिया के लिए मददगार हैं, वे निज़ाम या ढाँचे का बदल नहीं।

उन्होंने अपने मुफ़स्सल आर्टिकल में दिखाया है कि मौजूदा हालत में हिंदुस्तान का असल मसला यह है कि दफ़्तरों में काम करने वाले काम नहीं करते। सरकारी दफ़्तरों में ड्यूटी के एहसास की आख़िरी हद तक कमी है। ऐसी हालत में कंप्यूटर लगाने का क्या फ़ायदा होगा, जबकि कंप्यूटर को इस्तेमाल करने वाले हाथ अपने हिस्से का काम ज़िम्मेदाराना तौर पर न करें। उन्होंने दिलचस्प तौर पर यह लिखा है—

A racing car, pulled by bullocks, will not move faster than a bullock cart.

एक तेज़ रफ़्तार कार, जिसे बैल खींच रहे हों, वह बैलगाड़ी से ज़्यादा तेज़ नहीं चल सकती।

यही तब्सिरा मुख़्तलिफ़ सूरतों में ख़ुद इस्लामी मुमालिक पर भी चस्पाँ होता है, मसलन— अफ़राद की ज़रूरी तरबियत के बग़ैर मुल्क में शरई क़ानून को लागू करना वग़ैरह।

22 अप्रैल, 1986

पाकिस्तान जिन नारों से बना, उनमें सबसे अहम नारा यह था—

पाकिस्तान का मतलब क्या— ला-इलाहा इल्लल्लाह!

यह मुस्लिम लीग का नारा था। इसके बाद जब पाकिस्तान बन गया तो कुछ दीनी जमातों और दीनी क़ाइदीन ने यह कहना शुरू किया कि पाकिस्तान इस्लाम के नाम पर बना है, इसलिए यहाँ इस्लामी क़ानून की हुकूमत होनी चाहिए। एक दीनी रहनुमा ने मज़ीद यह दावा किया कि पाकिस्तान की अज़ीम अकसरियत इस्लाम चाहती है। सिर्फ़ थोड़े लोग हैं, जो इत्तिफ़ाक़न हुकूमत पर क़ाबिज़ हो गए हैं, वही ग़ैर-इस्लाम चाहते हैं, मगर पाकिस्तान में सेक्युलर पार्टियों का ग़लबा

साबित करता है कि मामला ऐसा नहीं है,मसलन— 1 अप्रैल, 1986 को बेनज़ीर भुट्टो लंदन से लाहौर पहुँची तो लाहौर के लोग उनके इस्तिक़बाल के लिए उमड़ पड़े। सड़कों पर यह नारा लग रहा था—

पाकिस्तान की तक़दीर— बेनज़ीर-बेनज़ीर!
(टाइम्स ऑफ इंडिया; 20 अप्रैल, 1986)

बेनज़ीर भुट्टो और उनकी पार्टी का नज़रिया वाज़ेह तौर पर ग़ैर-मज़हबी है। आज बेनज़ीर भुट्टो को पाकिस्तान में इतनी मक़बूलियत हासिल है कि जमात-ए-इस्लामी जैसी दीनी जमातें इलेक्शन के मैदान में उनका मुक़ाबला नहीं कर सकतीं, यहाँ तक कि जनरल ज़िया-उल-हक़ भी नहीं। इसी तरह सियासत के अलावा दूसरे मैदानों में भी ग़ैर-दीनी अनासिर— ख़्वाह वे मुस्बत हों या मनफ़ी— का ग़लबा साबित करता है कि वाक़या वह नहीं है, जैसा कि वहाँ के कुछ दीनी रहनुमा दावा करते हैं। हक़ीक़त यह है कि जिस चीज़ के नतीजे में पाकिस्तान वजूद में आया है, वह इस्लाम के नाम पर ग़ैर-हकीमाना सियासत चलाने का सबसे बड़ा मुज़ाहरा था। ऐसी सियासत का अंजाम वही हो सकता था, जो हुआ।

23 अप्रैल, 1986

एक नौजवान मिलने के लिए आए, जिनका नाम और पता यह है—

Suhrab Alam
Aftab Book Depot,
Sabzi Bagh, Patna-4

उन्होंने बताया कि मेरी ज़िंदगी इससे पहले बहुत ज़्यादा ग़लत थी। लोग मुझसे नफ़रत करते थे। इसके बाद मुझे आपकी किताब 'इंसान : अपने आपको पहचान' मिली। उसे पढ़कर मेरी ज़िंदगी बिलकुल बदल

गई। इसके बाद मैंने आपकी सारी किताबें पढ़ डालीं। उन्होंने कहा कि 'पैग़ंबर-ए-इंक़लाब' में आपने जो मुंतख़ब हदीसें लिखी हैं, उनको मैंने पढ़ा। मुझे ऐसा लगा, जैसे मैं बिलकुल नई हदीसें पढ़ रहा हूँ— ऐसी हदीसें, जिनको मैंने कभी पढ़ा नहीं था।

यह एक हक़ीक़त है कि इस्लाम की कहानी अभी तक अनकही कहानी (untold story) बनी हुई है। 21 अप्रैल, 1986 को भोपाल में मेरी एक तक़रीर थी, जिसमें कसरत से हिंदू साहिबान मौजूद थे। उस मौक़े पर मैंने कहा कि 1962 की हिंद-चीन जंग के बाद हुकूमत की तरफ़ से बहुत-से बयानात और दस्तावेज़ शाए हुए। इसके बाद हिंदुस्तानी फ़ौज के रिटायर्ड लेफ्टिनेंट जनरल मिस्टर ब्रजमोहन कोल (वफ़ात : 1972) ने ऐलान किया कि हिंद-चीन की कहानी का असल बाब अभी ग़ैर-बयानशुदा (unspoken) पड़ा हुआ है। चुनाँचे उन्होंने एक किताब लिखी, जिसका नाम है—

अनकही कहानी

The Untold Story

(Allied Publishers, 1967)

मैंने अपनी तक़रीर में कहा कि मैं भी आज आपको इस्लाम की 'Untold Story' सुनाना चाहता हूँ। इसके बाद मैंने वे हदीसें सुनाईं, जिनका ताल्लुक़ तौहीद, अख़्लाक़, अदल, इंसानी बराबरी और दूसरे अच्छे कामों से है। हिंदू-मुस्लिम दोनों बहुत मुतास्सिर हुए। भारतीय जनता पार्टी के मुक़ामी सदर मिस्टर सारंग ने तक़रीरके बाद खड़े होकर कहा कि यह तो वह इस्लाम है,जिसे हिंदुओं और मुसलमानों दोनों को इख़्तियार कर लेना चाहिए।

एक साहब ने यह तजवीज़ पेश की कि इस्लाम के तआरुफ़ पर इसी अंदाज़ में एक किताब तैयार की जाए और उसका नाम 'Untold Story' हो।

24 अप्रैल, 1986

अमेरिका के लिए लीबिया के मुअम्मर क़ज़ाफ़ी की 'दहशत-पसंदी' परेशानी का सबब बनी हुई थी। अमेरिका के सदर रोनाल्ड रीगन ने क़ज़ाफ़ी के ख़िलाफ़ बार-बार वार्निंग दी और फिर अप्रैल, 1986 में त्रिपोली (Tarabulus) पर हमला कर दिया। इस हमले में मुअम्मर क़ज़ाफ़ी की रिहायशगाह को निशाना बनाया गया था। हवाई बमबारी से काफ़ी नुकसान हुआ। हालाँकि मुअम्मर क़ज़ाफ़ी बचने में कामयाब हो गए। इसके फ़ौरन बाद मुअम्मर क़ज़ाफ़ी सारी दुनिया के अख़बारात में सफ़्हा-ए-अव्वल पर छप रहे थे। मुल्क के अंदर और मुल्क के बाहर उनकी इमेज काफ़ी बढ़ गई। अमेरिका अपने मक़सद में नाकाम रहा और मुअम्मर क़ज़ाफ़ी अपने मक़सद में कामयाब। अमेरिका के साबिक़ सदर जिमी कार्टर (पैदाइश : 1942) ने लीबिया पर अमेरिकी बमबारी को एक ग़लती (mistake) क़रार दिया। उन्होंने कहा—

"Col. Gaddafi was an outcaste. Now he is a hero."

(Times of India; 20 April, 1986)

यह एक मिसाल है, जिससे अंदाज़ा होता है कि किसी के ख़िलाफ़ अमली इक़दाम एक बेहद नाज़ुक मामला है। इसे हद दर्जा सोचे-समझे फ़ैसले के तहत होना चाहिए। अगर आधे-अधूरे अंदाज़े की बुनियाद पर इक़दाम (क़दम उठाना) किया गया, तो यह काउंटर-प्रोडक्टिव (counter-productive) साबित होगा यानी उसका नतीजा इसके बरअक्स निकलेगा, जो इक़दाम करने वाले ने बतौर ख़ुद अपने ज़हन में फ़र्ज़ कर लिया था, ख़्वाह इक़दाम करने वाला अमेरिका जैसा ताक़तवर मुल्क ही क्यों न हो और जिसके ख़िलाफ़ इक़दाम किया गया है, वह लीबिया जैसा कमज़ोर मुल्क।

25 अप्रैल, 1986

पाकिस्तान के एक अख़बार में एक किताब 'क़ादियानियों से ख़िताब' का इश्तेहार नज़र से गुज़रा। इस इश्तेहार के अलफ़ाज़ ये हैं—

> "इंसिदाद क़ादियानियत ऑर्डिनेंस के बाद क़ादियानी अब पाकिस्तान में ग़ैर-मुस्लिम अक़ल्लियत (minority) क़रार दिए जा चुके हैं, तो अब पाकिस्तानी मुसलमानों पर यह फ़र्ज़ पहले से भी ज़्यादा शिद्दत से आयद होता है कि क़ादियानियों को इस्लाम की दावत दें और क़ादियानी दज्जाल का पर्दा चाक करें। इसी फ़र्ज़ को सामने रखते हुए यह किताब तैयार की गई है। इसे फ़ौरन मँगवाकर अपने हल्क़े के क़ादियानियों में तक़सीम करके एक अहम दीनी फ़रीज़ा पूरा करें।"
>
> (हफ़्त रोज़ा अल-मिंबर, फ़ैसलाबाद; 15 मार्च, 1986)

मुसलमान मौजूदा ज़माने में इस्लामी दावत का नाम लेते हैं, मगर उनके अकाबिर तक इस से बेख़बर हैं कि इस्लामी दावत हक़ीक़तन क्या है। वे 'इस्लामी दावत' का मतलब यह समझते हैं कि ग़ैर-मुस्लिमों के दजल यानी साज़िश का पर्दा चाक किया जाए। हालाँकि इस क़िस्म के मामले का इस्लामी दावत से कोई ताल्लुक़ नहीं। यह लफ़्ज़ी कुश्ती है, न कि इस्लामी दावत।

इस्लामी दावत सरासर एक ख़ैर-ख़्वाही का अमल है। इसका सरचश्मा दाई का यह दर्द है कि वह एक भटके हुए इंसान को राह-ए-रास्त पर ले आए। यह अपनी हैसियत के एतिबार से मोहब्बत का अमल है, न कि नफ़रत और तहक़ीर का अमल। लोग दावत और मुनाज़रा-बाज़ी में फ़र्क़ नहीं करते। इसलिए वे ऐसे अलफ़ाज़ बोलते हैं, जिसका एक नमूना ऊपर दिए गए ऐलान में नज़र आता है।

26 अप्रैल, 1986

मौलाना कबीरुद्दीन फ़ारान (हिमाचल प्रदेश) से मुलाक़ात हुई। वे ज़हीन आदमी हैं। गुफ़्तगू के दौरान उन्होंने कहा कि मेरे अंदर तनक़ीदी मिज़ाज है। मुझे किसी राय से इख़्तिलाफ़ होता है, तो मैं फ़ौरन इसका इज़हार कर देता हूँ। मैंने कहा कि यह मिज़ाज बज़ात-ए-ख़ुद सही मिज़ाज है, मगर मुसलमान आम तौर पर 'इख़्तिलाफ़-ए-राय' और 'इख़्तिलाफ़-ए-अम्र' में फ़र्क़ नहीं करते। इख़्तिलाफ़-ए-राय यानी सोच का फ़र्क़ और इख़्तिलाफ़-ए-अम्र यानी अमली मुख़ालिफ़त। मेरे नज़दीक इख़्तिलाफ़-ए-राय एक जायज़ अमल है, मगर इख़्तिलाफ़-ए-अम्र बिलकुल नाजायज़ है। इख़्तिलाफ़-ए-राय और इख़्तिलाफ़-ए-अम्र में फ़र्क़ की मिसालें अस्हाब-ए-रसूल के यहाँ भी मौजूद हैं। हज़रत उस्मान के ज़माने में सहाबी-ए-रसूल अबू ज़र रज़ियल्लाहु अन्हु हज के लिए गए। वहाँ उन्हें मालूम हुआ कि तीसरे ख़लीफ़ा उस्मान रज़ियल्लाहु अन्हु ने यहाँ चार रकअतें पढ़ी हैं। अबू ज़र रज़ियल्लाहु अन्हु ने सख़्त अलफ़ाज़ में अपनी नापसंदीदगी का इज़हार किया और कहा कि मैं रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के साथ नमाज़ पढ़ चुका हूँ। आपने सिर्फ़ दो रकअत नमाज़ पढ़ी। फिर अबू बक्र और उमर के साथ भी मैंने दो रकअत नमाज़ पढ़ी। इसके बाद अबू ज़र रज़ियल्लाहुअन्हु उठे और चार रकअत नमाज़ अदा की। लोगों ने कहा कि आपने अमीरुल मोमिनीन पर चार रकअत के लिए एतराज़ किया और ख़ुद वही कर रहे हैं। उन्होंने जवाब दिया— أَشَدُّ الْخِلَافُ (मुसनद अहमद, हदीस नंबर 21460) यानी अमली मुख़ालिफ़त इससे भी ज़्यादा संगीन है। इसी क़िस्म का वाक़या मशहूर सहाबी-ए-रसूल अब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ियल्लाहु अन्हु का भी है। उन्होंने उस्मान रज़ियल्लाहु अन्हु के मिना में चार रकअत पढ़ने पर बहुत ही सख़्त अलफ़ाज़ में नापसंदीदगी का इज़हार किया और फिर ख़ुद चार रकअत पढ़ी। जब पूछा गया तो फ़रमाया— इख़्तिलाफ़ करना

बुरा है (الْخِلَافُ شَرٌّ) (सुनन अबू दाऊद, हदीस नंबर 1962)। इसके बरअक्स मुसलमानों का हाल यह है कि जब उन्हें राय के मामले में इख़्तिलाफ़ हो जाए, तो वे समझ लेते हैं कि अम्र और नज़्म (system) से इख़्तिलाफ़ करना भी उनके लिए दुरुस्त है। इसी कमज़ोरी की वजह से मुसलमानों से इत्तिफ़ाक़ के साथ कोई काम नहीं हो पाता।

हदीस "اخْتِلَافُ أُمَّتِي رَحْمَة" (अल-मक़ासिद अल-हसना, हदीस नंबर 39) का मतलब भी यही है यानी मेरी उम्मत का इख़्तिलाफ़ रहमत है। इस हदीस में इख़्तिलाफ़-ए-राय के इज़हार को रहमत कहा गया है, न कि अमली इख़्तिलाफ़ और इंतिशार को। अफ़राद को हर काम में इज्तिमाई नज़्म का पाबंद रहना चाहिए, अलबत्ता इख़्तिलाफ़-ए-राय को मुस्बत तरीक़े से ज़ाहिर करने के मामले में उन पर कोई पाबंदी नहीं। इंसाफ़ के तकाज़ों का लिहाज़ करते हुए वे किसी भी शख़्स से राय के मामले में इख़्तिलाफ़ कर सकते हैं, ख़्वाह वह बड़ा हो या छोटा।

27 अप्रैल, 1986

मौलाना हकीम बशीर हसन अंसारी (महबूब नगर) मरकज़ में तशरीफ़ लाए। गुफ़्तगू के दौरान उन्होंने एक लतीफ़ा बयान किया। कहा जाता है कि एक नवाब साहब थे, जिनका नाम उबैद था। एक रोज़ नवाब उबैद अपनी शान-ओ-शौकत के साथ निकले। उनके जुलूस में उनके ख़ादिम भी ज़र्क़-बर्क़ घोड़ों पर सवार होकर चल रहे थे। ख़ादिमों का हुलिया बता रहा था कि नवाब ने अपने ख़ादिमों पर बड़ी इनायत की है। एक ग़रीब शख़्स ने इस मंज़र को देखा तो अपने और उन ख़ादिमों के फ़र्क़ को देखकर वह बहुत मुतास्सिर हुआ। वह ख़ुदा से कह उठा—

مولا شدن از عبید بیا موز.

मौला बनना आप उबैद से सीखिए।

उबैद ने अपने ख़ादिमों को किस तरह नवाज़ रखा है और आप मेरे मौला हैं और मैं आपका ख़ादिम हूँ, मगर मैं आपकी नवाज़िश से महरूम हूँ।

कुछ अरसे के बाद ऐसा हुआ कि नवाब उबैद अपने ख़ादिमों से किसी बात पर नाराज़ हो गए और हुक्म दे दिया कि उनको कोड़े मारे जाएँ। मज़कूरा ग़रीब शख़्स दोबारा उधर से गुज़रा। उसने देखा कि ख़ादिमों पर कोड़े पड़ रहे हैं, मगर वे सब 'उबैद-उबैद' पुकार रहे हैं। वे जिससे मार खा रहे हैं, उससे फ़रियाद भी कर रहे हैं। उस वक़्त ग़ैब से आवाज़ आई—

بنده شدن از بندگان عبید بیاموز.

बंदा होने को उबैद के बंदों से सीखो।

यानी तुम ख़ुदा का बंदा होने का दावा करते हो और जब ख़ुदा की तरफ़ से मामूली तकलीफ़ पहुँची तो शिकायत करने लगे। उबैद के बंदे इससे बड़ी तकलीफ़ उठा रहे हैं, फिर भी वे शिकायत के बजाय उसी को पुकार रहे हैं। वे उसी की तरफ़ अपनी तवज्जोह लगाए हुए हैं। यह हालाँकि एक लतीफ़ा है, मगर इसमें मंसूबा-ए-तख़्लीक़ का एक बड़ा सबक़ छिपा हुआ है।

28 अप्रैल, 1986

टाइम्स ऑफ इंडिया (28 अप्रैल, 1986) सफ़्हा 8 पर एक ख़बर नीचे दी गई सुर्ख़ी के साथ छपी है—

USSR had alerted Libya against the raid.

यह ख़बर जिसकी डेटलाइन क़ाहिरा की है, इसमें बताया गया है कि वाशिंगटन ने लीबिया पर अपने हमले (15 अप्रैल, 1986) से एक घंटे पहले सोवियत यूनियन को बा-ख़बर कर दिया था। सोवियत यूनियन ने फ़ौरन इसकी इत्तिला कर्नल क़ज़ाफ़ी को कर दी। यही

पेशगी इत्तिला थी, जिसकी बिना पर अमेरिका का हमला नाकाम हो गया। ख़बर में अमेरिकी हमले को 'Biggest American Mistake' कहा गया है। पेशगी इत्तिला पाकर कर्नल क़ज़ाफ़ी ने फ़ौरन दो इक़दामात किए। उन्होंने अपने जंगी जहाज़ों को पड़ोसी मुल्क सूडान में भेज दिया और ख़ुद अपनी रिहायशगाह अज़ीज़िया कैंप से मुंतक़िल होकर दूसरी जगह चले गए। इस तरह कर्नल क़ज़ाफ़ी ख़ुद भी हमले से महफ़ूज़ रहे और उनके रूसी साख़्त के जंगी जहाज़ भी।

यह ख़बर मिस्टर सलाह मुंतसिर ने दी है, जो अक्टूबर मैगज़ीन (क़ाहिरा) के एडिटर हैं। यह ख़बर अगर सही है, तो इसका मतलब यह है कि अमेरिका को उसकी तरक़्क़ियों ने ज़रूरत से ज़्यादा ख़ुद-एतिमादी (over confidence) में मुब्तला कर दिया है और ज़रूरत से ज़्यादा ख़ुद-एतिमादी हमेशा आदमी के लिए उल्टी पड़ती है, ख़्वाह वह अमेरिका जैसी सुपर पावर क्यों न हो।

29 अप्रैल, 1986

मौजूदा ज़माने में मुस्लिम लीडरों ने मुसलमानों को सिर्फ़ एक ही बात बताई है और वह है— अपने मसाइल के लिए दूसरों से लड़ना। जो मसला अपनी कमज़ोरी की वजह से पैदा हो, उसको दूसरों के ऊपर डालना। शाह बानो बेगम का केस (1985) के सिलसिले में तमाम मुस्लिम लीडरों ने मुत्तहिदा तौर पर सुप्रीमकोर्ट और हुकूमत के ख़िलाफ़ पुर-शोर मुहिम चलाई। यह मेरे नज़दीक क़ौम के साथ ग़द्दारी है, क्योंकि इससे मज़कूरा ज़हन मज़ीद पुख़्ता हो जाता है।

इसे एक तक़ाबुली (comparative) मिसाल से समझा जा सकता है। निज़ामुद्दीन वेस्ट (नई दिल्ली) में हमारे मकान के सामने एक हिंदू बेवा औरत है। वह घरों के धुले हुए कपड़े प्रेस करती है। मालूम हुआ कि इस काम से वह रोज़ाना 60-70 रुपय कमा लेती है यानी तक़रीबन दो हज़ार रुपये महीना। इसके मुक़ाबले में शाह बानो बेगम को लीजिए। वह सात बरस तक मुक़दमा लड़ती रही। इसके बाद अदालत ने उसे 180

रुपये माहवार दिए जाने का फ़ैसला किया। अब ग़ौर कीजिए कि दोनों में से कौन ज़्यादा फ़ायदा में है। शाह बानो बेगम के अंदर अगर तामीरी मिज़ाज होता, तो वह किसी मुफ़ीद काम में मशग़ूल होकर ज़्यादा नफ़ा हासिल कर सकती थी, मगर उसे इसके मुआशरे ने सिर्फ़ लड़ाई-झगड़े का ज़हन दिया था। चुनाँचे वह शौहर से अलहदगी (separation) के बाद उससे मुसलसल लड़ती रही और बिल-आख़िर उसके हिस्से में नुक़सान के सिवा और कुछ न आया।

हक़ीक़त यह है कि हमारा असल मसला क्रीमिनल प्रोसीजर कोड की दफ़ा-125 नहीं है, जिसके ख़िलाफ़ हमारे तमाम अकाबिर जिहाद का झंडा उठाए हुए हैं, बल्कि लड़ाई-भिड़ाई का वह ज़हन है, जिसके सबसे ज़्यादा ज़िम्मेदार ख़ुद हमारे यही लीडर हैं। मुस्लिम लीडरों का हाल यह है कि मुसलमानों के अंदर तामीरी मिज़ाज पैदा करने के लिए कुछ नहीं करते, अलबत्ता हुकूमत के ख़िलाफ़ मुहिम चलाने का कोई शोशा उन्हें हाथ आ जाए, तो इस पर खूब जोश दिखाते हैं। उनकी यही सियासत है, जिसने मुसलमानों के अंदर इस सिरे से उस सिरे तक तख़रीबी मिज़ाज (destructive behaviour) पैदा कर दिया है। मुसलमान इस क़ाबिल ही नहीं रहे हैं कि वे मुस्बत अंदाज़ में सोचें और तामीरी अंदाज़ में कुछ करें।

30 अप्रैल, 1986

भारत में 20 हज़ार अख़बार निकलते हैं, जिनकी मज्मूई इशाअत (circulation) 50 मिलियन है। यह तादाद 1952 के मुक़ाबले में चौगुनी ज़्यादा है।

ख़ालिस क़ानूनी एतिबार से यह कहना सही है कि हिंदुस्तान के अख़बारात भी उतने ही आज़ाद हैं, जितने कि अमेरिका या जापान या मग़रिबी यूरोप के अख़बारात, मगर अमलन यह बात दुरुस्त नहीं। इसकी वजह यह है कि दूसरे तरक़्क़ी-याफ़्ता मुल्कों का अख़बार-नवीस

(writer) अपनी आज़ादी को बरक़रार रखने की पोज़ीशन में है, जबकि हिंदुस्तान का अख़बार-नवीस इस पोज़ीशन में नहीं है।

दूसरे तरक़्क़ी-याफ़्ता मुल्कों का अख़बार-नवीस इतना दौलतमंद होता है कि उसे कम-अज़-कम छोटी-मोटी रिश्वतों से ख़रीदा नहीं जा सकता, जबकि हिंदुस्तान का हाल यह है कि रियायती क़ीमत पर एक प्लॉट, कम क़ीमत पर एक फ़्लैट या यूरोप का एक तफ़रीही सफ़र (pleasure trip) भी इसके क़लम को मुतास्सिर करने के लिए काफ़ी है। चुनाँचे हिंदुस्तान के ताजिर और यहाँ की हुकूमत दोनों अख़बार-नवीस को मज़कूरा क़िस्म की रिश्वतें देकर प्रेस की क़ानूनी आज़ादी को ख़रीद रहे हैं।

इंडियन एक्सप्रेस (30 अप्रैल, 1986) के एक आर्टिकल में बताया गया है कि दिल्ली के बहुत से अंग्रेज़ी अख़बार-नवीस बड़े-बड़े ताजिरों से बा-क़ायदा रक़में पाते हैं, ताकि वे उनके मुवाफ़िक़ चीज़ें लिखें और छापें।

उत्तर प्रदेश की हुकूमत ने पाँच अख़बार-नवीसों को यूरोप के तफ़रीही सफ़र पर रवाना किया। उन्हें चीफ़ मिनिस्टर के रिलीफ़ फ़ंड और जर्नलिस्ट वेल्फेयर फ़ंड से पंद्रह हज़ार रुपये फ़ी अख़बार-नवीस दिए गए। नीज़ उन्हें पिस्तौल बरामद करने का लाइसेंस भी दिया गया। इसका वाज़ेह मतलब यह था कि वे बाहर से पिस्तौल ख़रीदकर लाएँ और हिंदुस्तान में इसे फ़ी पिस्तौल पंद्रह हज़ार रुपये नफ़ा के साथ बेच दें।

किसी हक़ से फ़ायदा उठाना उसी वक़्त मुमकिन होता है, जबकि इसके मुवाफ़िक़ हालात भी लोगों के लिए मौजूद हों।

11 मई, 1986

आज मैंने सूरह अल-क़मर की तफ़्सीर मुकम्मल की है। इस सूरह में यह आयत चार मर्तबा (आयत नंबर 17, 22, 32, 40) आई है—

وَلَقَدْ يَسَّرْنَا الْقُرْآنَ لِلذِّكْرِ فَهَلْ مِنْ مُدَّكِرٍ.

"और हमने क़ुरआन को नसीहत के लिए आसान कर दिया, तो क्या कोई है नसीहत हासिल करने वाला।"

इस आयत की तफ़्सीर में मुफ़स्सिरीन को एक मुश्किल पेश आई है। अगर उसका मफ़हूम ज़ाहिरी अलफ़ाज़ के लिहाज़ से यह लिया जाए कि क़ुरआन से नसीहत हासिल करना बिलकुल आसान है, तो एक शख़्स को यह कहने का मौक़ा मिल जाता है कि क़ुरआन में, मआज़-अल्लाह, गहरे मअनी मौजूद नहीं हैं, ये सिर्फ़ आम लोगों की किताब है और अगर यह माना जाए कि क़ुरआन में गहरे हक़ाइक़ (facts) हैं, जैसा कि हदीस में भी आया है कि لَا تَنْقَضِي عَجَائِبُه (सुनन अल-तिरमिज़ी, हदीस नंबर 2906) यानी इसके अजाइबात ख़त्म नहीं होंगे, तो फिर तफ़्सीर की मानवियत (significance) बज़ाहिर मुश्किल मालूम होती है। जिन मुफ़स्सिरीन ने इस आयत को वाज़ेह करने की कोशिश की है, उनकी लंबी-लंबी इबारतों (writings) के बावजूद मुतय्यन तौर पर यह समझ में नहीं आता कि इस आयत का मफ़हूम क्या है। हक़ीक़त यह है कि जिन मुफ़स्सिरीन ने ज़्यादा तफ़्सील के साथ इस आयत का मफ़हूम बताने की कोशिश की है, उन्होंने आयत को और ज़्यादा मुश्किल बना दिया है।इसी उलझन की बिना पर ऐसा हुआ कि मैंने सूरह अल-क़मर की पूरी तफ़्सीर लिख ली, मगर इस आयत की तफ़्सीर लिखने से रह गई। आज जब कि तफ़्सीर के ख़ात्मे पर इस आयत के बारे में ग़ौर कर रहा था कि अल्लाह तआला की तरफ़ से गोया यह बात दिल में डाली गई और मेरे दिल ने कहा कि यही असल तफ़्सीर है। 'तज़्कीरुल क़ुरआन' में यही तफ़्सीर हस्ब-ए-ज़ैल अलफ़ाज़ में दर्ज है—

"क़ुरआन हालाँकि गहरे मअनी की किताब है, मगर इसके अंदाज़-ए-बयाँ में हद दर्जा वुज़ूह (clarity) है। इस वुज़ूह की

बिना पर क़ुरआन को समझना हर आदमी के लिए आसान हो गयाहै, ख़्वाह एक आम आदमी हो या एक आला तालीम-ए-याफ़्ता आदमी।"

'तज़्कीरुल क़ुरआन' की तरतीब के सिलसिले में मुझे इस तरह के तजुर्बे बार-बार पेश आए हैं।

ज़िंदगी के क़ीमती साल

(नए साल का पैग़ाम)

आदमी की औसत उम्र इस दुनिया में तक़रीबन सत्तर साल है। बुढ़ापे की उम्र के बारे में कहा जाता है कि ओल्ड इज़ गोल्ड (old is gold)। यह क़ौल लफ़्ज़-ब-लफ़्ज़ सही है। बुढ़ापे की उम्र में आदमी सबसे ज़्यादा इस पोज़ीशन में होता है कि वह अपने बाद वालों को अपना बेहतरीन (best) दे सके— ज़्यादा मालूमात, ज़्यादा तजुर्बा, ज़्यादा दानिशमंदी, ज़िंदगी की ज़्यादा बेहतर प्लानिंग। यह सुनहरा मौक़ा हर उस इंसान के लिए है, जिसकी उम्र ज़्यादा हो जाएगी, बशर्ते कि वह इस दुनिया में बा-उसूल इंसान (man of principle) बनकर ज़िंदगी गुज़ारे—

- वह सेहत के फ़ितरी उसूल का पाबंद हो, ताकि वह अपनी उम्र के आख़िर दौर तक दुनिया में क़ाबिल-ए-कार बना रहे।
- वह सादा ज़िंदगी गुज़ारे और अपने आपको इसराफ़ से बचाए।
- वह किसी हाल में अपने आपको किसी ग़लत आदत में मुब्तला न होने दे।
- वह हर हाल में मुस्बत सोच (positive thinking) का तरीक़ा इख़्तियार करे, हत्ता कि वह मनफ़ी तजुर्बे को मुस्बत सबक़ में तब्दील कर सके।

- वह किसी से उम्मीद न रखे।
- वह इस दुनिया में देने वाला बनकर रहे, न कि लेने वाला।
- वह ग़ुस्से से इस तरह बचे जिस तरह कोई शख़्स अपने आपको साँप बिच्छू से बचाता है।
- वह सच्चे दिल से लोगों का ख़ैर-ख़्वाह बने।
- अगर उससे कोई ग़लती हो जाए, तो वह फ़ौरन अपनी ग़लती का एतिराफ़ कर ले, वह ऐसा हरगिज़ न करे कि अपनी ग़लती के लिए उज्र (excuse) पेश करना शुरू कर दे।
- वह लोगों के दरमियान हमेशा मुतवाज़े (modest) बनकर रहे।

ख़बरनामा इस्लामी मरकज़ : 281

सी.पी.एस. इंटरनेशनल का अहम मक़सद यह है कि सारी दुनिया में क़ुरआन को इंसान की क़ाबिल-ए-फ़हम ज़बानों में आम किया जाए। इस मक़सद से जो फ़ायदा हासिल होता है, वह नीचे दिए गए फीडबैक से मालूम हो सकता है। यह तास्सुर एक स्पेनिश ख़ातून ने दिया है। उन्हें स्पेनिश तर्जुमा-ए-क़ुरआन अरब अमीरात (U.A.E.) में मिला था—

> “The Quran in Spanish is a blessing. I am very grateful to have the word of God in my language and physical form. It is very easy to understand and makes you want to read it. I think it is very important that each person has a Qur’an in their language. It feels very comfortable and pleasant to have it. For example, I don’t speak English

very well or Arabic. I got it on the internet, but seeing it, touching it, and being able to read it without language restrictions is wonderful."

मिस्टर तारिक अज़ीज़ कोलकाता में रहते हैं और एम.बी.बी.एस. के स्टूडेंट हैं। उन्हें जो फ़ायदा हासिल हुआ है, वह उन्होंने इन अलफ़ाज़ में लिखा है—

"Mualana Wahiduddin khan's lectures have taught me the art of my anger and ego management."

(tarikaziz****@gmail.com)

सी.पी.एस. सहारनपुर की टीम ने 2 दिसंबर, 2023 को एम.एम. इंटरनेशनल स्कूल (सहारनपुर) में मुनाक़िद इंटरफेथ प्रोग्राम में डॉक्टर मोहम्मद असलम ख़ान की सरपरस्ती में हिस्सा लिया। वहाँ उन्होंने बताया कि इस्लाम का मिशन लोगों के दरमियान हम-आहंगी पैदा करना है। क़ुरआन यही तालीम देता है और यह भी एक ग़लतफ़हमी है कि क़ुरआन किसी ख़ास क़ौम की किताब है। क़ुरआन तमाम इंसानों की किताब है, इसलिए तमाम लोगों को क़ुरआन पढ़ना चाहिए। मिस रेनू (सहारनपुर) इससे पहले मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान साहब की किताबें पढ़ चुकी थीं। उन्होंने बताया कि मौलाना साहब की किताबें हमें ईश्वर से जोड़ने का काम करती हैं। प्रोग्राम के आख़िर में तमाम ऑडियंस के दरमियान सी.पी.एस. का स्पिरिचुअल लिटरेचर तक़सीम किया गया।

On invitation from the Jesuit Priests of Ashirvad, accompanied by Abrar Mudasser. I attended a session on giving inputs for introducing a study of different religions at school and pre-university level on 9th December 2023. There are 58 schools run by the Jesuits

in Karnataka. The purpose they mentioned was to give an understanding of all religions for helping the youth to be able to live in harmony and peace with fellow beings. Presented the points in two capacities: 1. As a representative of CPS International—Student of Maulana Saheb for Islamic studies and 2. As an educationist and counsellor. Introduced Maulana Saheb's contribution towards global peace and presenting Islam as it is from the original sources, as a religion of peace and a religion of nature. The difference between Muslim culture and Islam and the importance of explaining the spirit behind Islamic rituals and the creation plan to the students and staff was highlighted. The points and suggestions were well received. Literature was distributed to the participants. All praise be to Allah through whose blessings all good things are accomplished. May Allah grant you all well being of every kind and for always. Aameen. ~ Fathima Sarah, Karnataka CPS Chapter.

मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान साहब ने 2001 में अफ़राद के तज़्किये और तरबियत के लिए संडे क्लास का सिलसिला शुरू किया था। यह सिलसिला अब भी जारी है। हर रविवार को डॉ. फ़रीदा ख़ानम और डॉ. सानियसनैन ख़ान ख़िताब करते हैं। यह ख़िताब सी.पी.एस. इंटरनेशनल के फ़ेसबुक पेज (www.fb.com/maulanawkhan) पर हिंदुस्तानी वक़्त के मुताबिक़ साढ़े दस बजे से लाइव सुना जा सकता है। 10 दिसंबर को डॉ. फ़रीदा ख़ानम ने ख़िताब किया। उनका मौज़ू था—ख़ुदा के नाम पर जंग (Making War in the Name of God)।

इस ख़िताब में डॉ. साहिबा ने यह वाज़ेह किया कि तमाम पैग़ंबरों के आने का मक़सद इंसानों को जन्नत का रास्ता दिखाना और जहन्नम से दूर करना था। यह मक़सद बिलकुल भी नहीं था कि इंसानों को मज़हबी जंग के नाम पर क़त्ल करके हमेशा के लिए अल्लाह की रहमत यानी जन्नत से महरूम कर दिया जाए, जैसा कि आजकल कुछ मुसलमान कर रहे हैं। यह रविश आदम से मुहम्मद तक तमाम पैग़ंबर अलैहिस्सलाम के मक़सद को जियोपरडाइज़ (jeopardize) करने के हम-मअनी है।

सी.पी.एस. इंटरनेशनल (यू.एस. चैप्टर) के मेंबर ख़्वाजा कलीमुद्दीन साहब ने अपने दो साथियों के साथ दिसंबर, 2023 में वस्ती अमेरिका के मुल्कएल सल्वाडोर का दौरा किया, ताकि वहाँ दावती इमकानात का जायज़ा लेकर क़ुरआन का पैग़ाम आम किया जाए। दर्ज-ए-ज़ैलमें उनके इस दौरे की कुछ बातें उनके अलफ़ाज़ में शेयर की जा रही हैं—

Alhamdulillah, we (Bhatti Sahab and Nabi Sahab from Virginia) landed at San Salvador airport on time. A young Imam received us by the name of Mahmoud. He took us to a very nice hotel named Beverly Hills. He gave us the whole week's program from 3rd to 10th December. During this trip, we came to Santa Ana as per the program given. Here, at a mosque, we were introduced to the community waiting for us. I gave a brief talk on delivering the message. We then had lunch and went downtown to distribute Quran with a group of people from the community consisting of young people.

El Salvador is an excellent place for Quran distribution, as it is a highly welcoming and open society. (Khaja Kaleemuddin, CPS USA)

मुल्की और ग़ैर-मुल्की ज़बानों में मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान साहब की किताबों के तर्जुमे का काम जारी है, मसलन— 'मज़हब और जदीद चैलेंज' का अब स्पेनिश ज़बान में तर्जुमा हो चुका है। 'अज़मत-ए-क़ुरआन' के मुंतख़ब हिस्सों के तर्जुमे इंग्लिश ज़बान में पहले ही शाए हो चुके थे। अब ये मुंतख़ब हिस्से अरबी और स्पेनिश ज़बानों में भी तर्जुमा होकर शाए हो गए हैं। इसके अलावा हिंदी, बंगाली, तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मराठी, आसामी, गुजराती और इंग्लिश ज़बानों में भी तर्जुमे का सिलसिला जारी है। इंग्लिश में अब तक तक़रीबन 120 छोटी-बड़ी किताबें मंज़र-ए-आम पर आ चुकी हैं। मिसाल के तौर पर 'किताब-ए-मारिफ़त' और 'इस्लाम : एक तआरुफ़'। हिंदी में तक़रीबन 25 किताबों के तर्जुमे हो चुके हैं, मसलन— 'अमन-ए-आलम'। बंगाली में 7 किताबों के तर्जुमे शाए हो चुके हैं, मसलन— 'इस्लाम : दौर-ए-जदीद का ख़ालिक़'। इसी तरह साउथ इंडिया की चारों ज़बानों में से तेलुगु में तक़रीबन 96 किताबों के तर्जुमे हो चुके हैं, मसलन— 'दौर-ए-दावत' और 'पैग़ंबर-ए-इंक़लाब'। कन्नड़ में 5 किताबों के तर्जुमे हो चुके हैं। मिसाल के तौर पर 'अल्लाहु अकबर'। मलयालम में 14 किताबों के तर्जुमे हो चुके हैं, मसलन— 'क़ुरआनिक़ विज़्डम' और तमिल में 10 किताबों के तर्जुमे हो चुके हैं, मसलन— 'राज़-ए-हयात'। नॉर्थ-ईस्ट की मुख़्तलिफ़ ज़बानों में भी तर्जुमे का काम जारी है, मसलन— 'क़यामत का अलार्म' (मणिपुरी)। इसी तरह अब तक उर्दू के अलावा 'तज़्कीरुल क़ुरआन' के 4 ज़बानों (इंग्लिश, हिंदी, थाई और सिंधी)

में तर्जुमे शाए हो चुके हैं। पश्तो और बांग्ला ज़बान में तर्जुमे का काम जारी है। इसके अलावा तक़रीबन 40 नेशनल और इंटरनेशनल ज़बानों में क़ुरआन के तर्जुमे शाए हो चुके हैं। इन तमाम किताबों और तर्जुमा-ए-क़ुरआन को सी.पी.एस. इंटरनेशनल की वेबसाइट से डाउनलोड किया जा सकता है। वेबसाइट पर विज़िट करने के लिए नीचे दिए गए QR कोड को अपने फ़ोन से स्कैन कीजिए।

No. 50760/90

शांति और आध्यात्मिकता पर और किताबें।

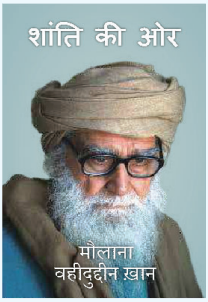

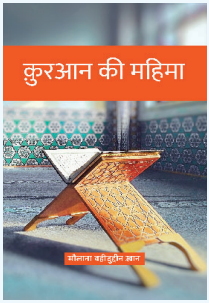

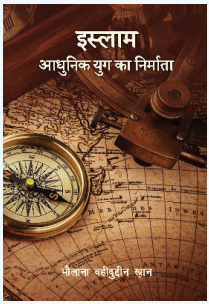

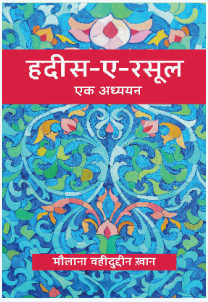

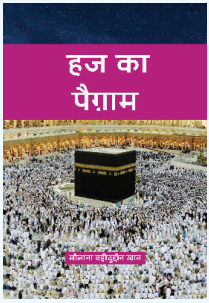

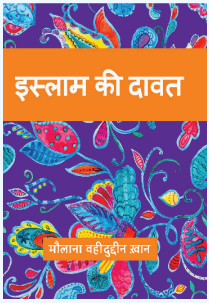

आध्यात्मिक सेट

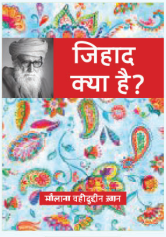

₹30/-

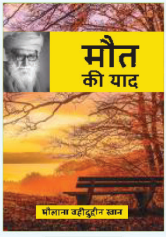

₹40/-

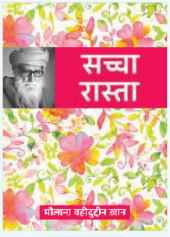

₹20/-

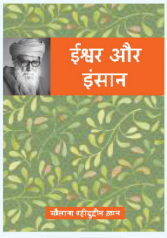

₹40/-

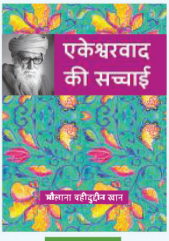

₹30/-

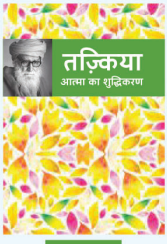

₹45/-

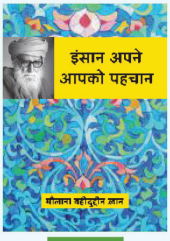

₹20/-

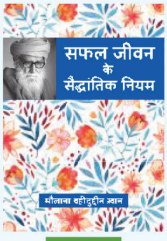

₹40/-